दस गुरु

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए-

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2017
प्रतियाँ : 1000

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं संयोजन : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497**
मुद्रक : **यू०आर०बी० प्रिंटिंग प्रैस, शैड नं. 2, रतपुर कॉलोनी, पिंजौर, मो. 9466111730, 9466112730**

भूमिका

मेरी प्रिय आत्माओ ! प्रत्येक देश की कोई न कोई विशेषता होती है । जब हम भारतीय इतिहास के पन्नों पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि हमारे राष्ट्र पर जब-जब विपत्तियों के बादल मंडराये हैं तो उस समय अत्याचारों, अंधविश्वासों, कुरीतियों के निवारणार्थ किसी न किसी महापुरुष का आविर्भाव हुआ है । जब रावण के अत्याचार बढ़े तो श्रीराम का, जब कंस के अत्याचार बढ़े तो श्रीकृष्ण का, इसी प्रकार जब बौद्धों का प्रचार बढ़ा तो हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए आदिशंकराचार्य का आविर्भाव हुआ । इसी प्रकार जब मुसलमानों के अत्याचार बढ़े तो हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए सिक्ख गुरुओं का आविर्भाव हुआ और इन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों को न्योछावर कर दिया ।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने सिक्खों के दस गुरुओं का जीवन-चरित्र बड़ी श्रद्धा एवं लगन के साथ लिखा है । इन गुरुओं की जीवनियों के अध्ययन से पाठकों को अवश्य लाभ होगा और उनके हृदय में देश प्रेम और मानवता की सेवा के प्रति भी प्रेम जागृत होगा । गुरु नानक देव जी की शिक्षाओं से लेकर गुरु गोबिन्द सिंह जी के पौरुष तक सभी गुरुओं के जीवन पर प्रकाश डाला है । दसवें गुरु जी के त्याग तथा पुत्रों के बलिदान को भी लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है । अतः लीजिए आप भी इस रुहानी गुलदस्ता रूपी दस गुरुओं की संक्षिप्त जीवनियों के पुष्पों को देखिए और झूम-झूम कर आनंद विभोर हो जाइये । वस्तुतः समर्पण और सेवा के संस्कार नई पीढ़ी तक भी पहुँचे इसी प्रेरणा से इस पुस्तक का सृजन किया गया है ।

प्रस्तुतः पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री जय किशन, सत्यपाल मोदी, रोशनलाल अग्रवाल, नरेश बंसल आदि ने सहयोग प्रदान किया है । अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी । विशेषतः जय किशन जी ने

इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान प्रदान किया है । मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि इनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता । मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्त्ताओं का भी अत्यन्त धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से मैंने संदर्भ उद्धृत किये हैं ।

जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका भी कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ । मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है । परन्तु अल्पज्ञ व अपूर्ण होने के कारण फिर भी यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा । पाठकों से अनुरोध है कि त्रुटियों से अवगत करवाने का कष्ट करें जिससे अगले संस्करण में त्रुटियों को दूर किया जा सके ।

धर्म पाल कपूर

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

तिथि : 8-4-2017

प्रस्तावना

भारत में मुगलों के अत्याचार दिन-प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे थे। उनका विरोध करने वाला कोई भी राजा नहीं था। वस्तुतः सभी राजा उनके ही शासन का अंग बन चुके थे। ऐसे में पंजाब में सिक्ख गुरुओं ने अपने त्याग और तप का विशेष परिचय दिया। गुरु अर्जुन देव जी तथा गुरु तेग बहादुर जी के बलिदान के कारण सिक्ख संगत आत्म रक्षा हेतु सोचने पर मजबूर हो गई और उन्होंने अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करने का निर्णय लिया। दसवें गुरु गोबिन्द सिंह जी यद्यपि बहुत ही कम आयु के थे फिर भी उन्होंने अत्याचार के विरुद्ध बिगुल बजा दिया और औरंगजेब से टक्कर लेने की ठान ली। एक सम्राट् के विरुद्ध बिगुल बजाना कोई आसान कार्य नहीं था।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने सिक्खों के दस गुरुओं के बारे में प्रकाश डाल कर भारतीय इतिहास को ज्वलन्त कर दिया। इस पुस्तक से पाठकों को अवश्य ही लाभ होगा और गुरुओं के त्यागमयी जीवन के दर्शन होंगे। गुरुओं के त्यागमयी जीवन से मानव जीवन में त्याग के प्रति आकर्षण बढ़ेगा ऐसा मेरा विश्वास है। पाठकगण उनके आदर्शों को अपने जीवन में उतारने का भरसक प्रयास करेंगे। यद्यपि सभी गुरुओं ने सामान्य परिवारों में जन्म लिया फिर भी सत्त्वगुण उनके अन्तःकरण में जन्म से ही समाया हुआ था। वे त्याग और तपस्या की साक्षात मूर्ति थे। यद्यपि गुरु नानक देव सदा गृहस्थ का पालन करते रहे फिर भी बाबर जैसे आततायी को ललकार कर कहने लगे—

बाबरा ! बाबरा ! ठहर और बंद कर अपना अत्याचार।

बाबर एक पल के लिये सोचने पर मजबूर हो गये और उसने गुरु नानक देव की खिदमत करनी चाही। परन्तु गुरुजी ने स्पष्ट कह दिया—

यदि तू हमारी खिदमत करना चाहता है तो सारे कैदियों को छोड़ दे और लूटपाट बंद कर दे। यही हमारी सबसे बड़ी सेवा होगी।

गुरु अर्जन देव जी ने गुरुग्रंथसाहिब की रचना की। इसमें उन्होंने बाबा शेख़ फ़रीद से लेकर गुरु तेग बहादुर जी तक के सभी संतों की रचनाओं को विशेष स्थान दिया। इस प्रकार भाषा की दृष्टि से यह ग्रंथ एक अनुपम और अनूठा ग्रंथ कहलाया।

इनमें गुरु तेग बहादुर जी के बलिदान को भी भुलाया नहीं जा सकता। मुगल बादशाह औरगंजेब ने गुरु जी से इस्लाम धर्म कबूल करने के लिए कहा

जिस पर गुरु जी ने उन्हें इनकार कर दिया। उनकी बात सुन कर औरंगजेब क्रोध से भर उठा जिससे उसने गुरुजी को पिंजरे में बंद करके चांदनी चौक पर रखवा दिया। उनके शिष्यों का उनके सामने क़त्ल कर दिया गया। परन्तु गुरुजी टस से मस न हुए। अंत में औरंगजेब ने गुरु जी के क़त्ल का आदेश दे दिया। उनकी शहादत से सारे हिन्दुस्तान में मुसलमानों के प्रति आक्रोश फैल गया। मुगलों का पूरे देश में विरोध आरम्भ हो गया। ऐसे समय में गुरु गोबिन्द सिंह जी ने बड़ी वीरता और दूरदर्शिता से काम लिया। उन्होंने सिक्खों में जोश भर दिया और कहा–

सुरा सो पहचानिए जो लरै दीन के हेत।
पुरज-पुरजा कट मरै कबहुं न छाडै खेत।।

उन्होंने सिक्खों को सत श्रीअकाल का नारा दिया तथा एक फौज़ तैयार कर डाली जो मुगलों के अत्याचारों को रोक सके। चमकौर युद्ध में गुरुजी के दो पुत्रों ने अपने शौर्य की परीक्षा दे डाली और वे सतश्रीअकाल का नारा लगाते हुए पंच तत्त्व में विलीन हो गये। इनके दो पुत्र मुगलों के हत्थे चढ़ गये जिन्हें जीवित सरहंद में दीवार में चिनवा दिया गया। गुरु जी मुगलों को काटते हुए मुगल सेना को चकमा देकर रायगढ़ पहुँच गये। रायगढ़ में पुनः युद्ध की तैयारी होने लगी। इनके ही एक साथी वैरागी ने सरहिंद में मुगलों का नाश करके वहाँ पर हिन्दू धर्म का झंडा लहरा दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिक्ख गुरुओं ने मुगलों के अत्याचारी शासन का अंत करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपना बलिदान देकर भी उन्होंने हिन्दू धर्म की लाज को बचाये रखा। विश्व के इतिहास में ऐसा बलिदान कहीं भी दिखाई नहीं देता। अतः प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ने के बाद पाठकों को सिक्ख गुरुओं और उनके त्याग के विषय में जानकारी प्राप्त होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

जय किशन धीमान, एम.ए.
गांव कोट जिला पंचकूला
हरियाणा-134118
मोबाइल : 9468340497

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और इसका मूल्य सदुपयोग है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1	गुरु नानक देव	1
2	गुरु अंगद देव	39
3	गुरु अमर दास	53
4	गुरु राम दास	67
5	गुरु अर्जन देव	75
6	गुरु हरिगोविन्द	95
7	गुरु हरिराय	109
8.	गुरु हरिकिशन	115
9.	गुरु तेग बहादुर	123
10.	गुरु गोबिन्द सिंह	141

गुरु नानक देव जी

15-4-1469 ई० - 22-9-1539 ई० (70 वर्ष 5 महीने 7 दिन)

1. गुरु नानक देव

सतगुरु नानक प्रगटिया, मिटी धुध जगि चानण होआ। —भाई गुरदास

सिक्ख पंथ के प्रवर्तक गुरु नानक देव विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। ये एक महान् संत, निष्ठावान साधक, क्रान्तिदर्शी समाज सुधारक, प्रगतिशील पंथ-प्रवर्तक तथा मानवतावादी, गहन चिंतक थे। मध्ययुग से पहले गुरु नानक सम्भवतः अकेले धर्मगुरु थे, जिन्होंने उस युग के राजनीतिक आतंकवाद, अत्याचार, हिंसा और दमन के प्रति अपना असंतोष व्यक्त किया था।

वह मुगल बादशाह बाबर का युग था। उस समय बाबर द्वारा ऐमनाबाद पर आक्रमण के अवसर पर जो हिंसा और अत्याचार हुए, उनके प्रति गुरु नानक ने तीखा रोष प्रकट किया और उन निर्दयी तथा नृशंस शासकों की तुलना सिंह, कुत्तों और कसाइयों से की—

राजे सिंह मुकद्दम कुत्ते, जाइ जगाइन बैठे सुत्ते।

चाकर नहदां पाइनह घाउ, रतु पितु कुति हो चटि जाहूं।।

....कलि काती राजे कसाइ।

नई राजनीतिक चेतना का घोष करके उन्होंने तत्कालीन भारतीय जनमानस में एक नई शक्ति भर दी। इसीलिए गुरु नानक को युग-प्रवर्तक लोकनायक की संज्ञा दी गई। वे समाज, धर्म और राजनीतिक व्यवस्था के प्रति पूरी तरह से जागरूक थे। किसी भी तरह की विसंगति उन्हें मान्य नहीं थी। भारतीय अस्मिता की सही पहचान के लिए उनकी वाणी सदा मुखरित रहती थी। सभी वर्गों की समानता, एकता, सदाशयता और सामाजिक न्यायप्रियता के वे कट्टर समर्थक थे।

गुरु नानक का हृदय, दलितों के प्रति सदैव द्रवित रहता था। शोषण के प्रति उनका विरोध स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आता था। नानक तो उनके

साथ खड़ा होता था, जो नीचों से भी अधिक नीच है। बड़ों से उसका क्या वास्ता–

नीचां अंदर नीच जाति नीचोहू अति नीच।

नानक तिनके संग साथ वड़ियां सिंउ क्या रीस।।

गुरु नानक की मान्यता थी कि धनी वर्ग की रोटियों में उनके द्वारा उत्पीड़ित हुए दलितों का रक्त रहता है तथा दीनों द्वारा अर्जित श्रम की रोटियों में दूध होता है। दूसरों के अधिकार को मारना, हिन्दुओं के लिए गाय का मांस खाना है और मुसलमानों के लिए सूअर के मांस के समान है। अपने युग की पाखण्डपूर्ण साधनाओं तथा आडम्बरों से भरे कर्मकाण्डों का उन्होंने भरपूर विरोध किया था। उस युग में प्रचलित विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, मत-मतान्तरों और साधना-पद्धतियों के झूठे स्वरूपों पर प्रहार करते हुए उन्होंने जनमानस को सत्य का मार्ग दिखाने का भरसक प्रयत्न किया था।

उस काल में, ब्राह्मणों के स्वार्थी कर्मकाण्डों से सारा जनमानस अंधविश्वासों से भरा पड़ा था। ब्राह्मणों के इन कर्मकाण्डों का विरोध करने के लिए ही उन्होंने एक नया पंथ चलाया। यह पंथ ही आज 'सिक्ख पंथ' के नाम से जाना जाता है। उन्होंने ब्राह्मण उसे माना जो ब्रह्म का चिन्तन करता है। इसी प्रकार सच्चे मुसलमान के लिए मेहर ही 'मस्जिद' है, शील ही 'रोजा' है और अच्छा कर्म ही 'काबा' है।

वस्तुतः गुरु नानक किसी के विरोधी नहीं थे। वे हर व्यक्ति को उसके सही धर्म का ज्ञान कराना चाहते थे। श्रेष्ठ हिन्दू कैसे बना जाए, सच्चा मुसलमान कैसा हो, अच्छा सूफी कैसे बना जा सकता है और श्रेष्ठ योगी की पहचान किससे होनी चाहिए। उन्होंने जीवन को व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया था। मानवीय मनोवृत्तियों का परिष्कार करना उनका लक्ष्य था। उनका कहना था कि व्यक्ति का लक्ष्य, मानव-सेवा, मानव-प्रेम और मानव-कल्याण होना चाहिए। आज के युग में मानव जिस अनास्था, अविश्वास, स्वार्थ, भौतिकता, चरित्रहीनता, असमानता, अहंकार, झूठ और बेइमानी के दौर से गुजर रहा है, उस युग में गुरु नानक देव का जीवन और सन्देश मानव को नया प्रकाश दिखा सकता है और उसका मार्गदर्शन कर सकता है।

1. बाल्यकाल और शिक्षा –

15-4-1469 ई० को गुरु नानक का जन्म, तलवंडी (ननकाना साहिब, पाकिस्तान) के प्रधान पटवारी मेहता कालूराम बेदी के घर हुआ था। मेहता कालूराम बेदी तलवंडी के शासक राय बुलार के प्रधान पटवारी थे और उनके खास विश्वासपात्र थे। उनके घर में किसी तरह का अभाव नहीं था। यह वह युग था, जबकि भारत में अज्ञान का अंधकार सर्वत्र फैला हुआ था। मुसलमान शासकों के अत्याचारों से भारत की हिन्दू जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। धार्मिक आस्थाएं टूट रही थीं, समाज बिखर रहा था और सर्वत्र अन्याय का बोलबाला था। हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाया जा रहा था और इस्लाम की जड़ें मजबूती से जमाई जा रही थीं।

ऐसे समय में गुरु नानक जनोद्धार के लिए इस धरती पर आए थे। नानक की माता का नाम माता तृप्ता था। वे एक धार्मिक महिला थीं और निर्धनों के प्रति उनके मन में बड़ा दया भाव रहता था। नानक के जन्म से पहले माता तृप्ता ने एक पुत्री को जन्म दिया था। उसका नाम नानकी था। बहन के कारण से ही नानक उनका नाम पड़ा था जबकि बहन का नाम नानकी उसके ननिहाल में रहने के कारण पड़ा था। प्रधान पटवारी मेहता कालूराम बेदी के घर में बालक नानक का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से होने लगा। बड़ी बेबे नानकी अपने छोटे भाई का बहुत प्यार रखती थी। दोनों भाई-बहनों में बड़ा स्नेह था। वह नानक को खिलाने के लिए अपने साथ ले जाया करती थी। आस-पास के बच्चे दोनों भाई-बहन के साथ खेलने आ जाते और परस्पर बड़े प्रेम-भाव से व्यवहार करते।

बचपन से ही **'सत् करतार'** का मधुर वचन प्रायः नानक के मुख से निकला करता था जिसका भाव था कि परमात्मा, जिसने हमें जन्म दिया है, सच्चा है और शेष सब झूठ है। नानक जब 5 वर्ष के हुए तो उनके पिता ने उन्हें पंडित गोपालदास पांधे के यहाँ विद्या प्राप्त करने के लिए भेजा। योग्य शिष्य को पाकर पंडित गोपालदास की प्रसन्न्ता का पारावार न रहा। पंडित जी बड़े मनोयोग से नानक को पढ़ाने लगे। बालक नानक भी पंडित जी से शिक्षा प्राप्त करते रहे। एक दिन पंडित जी ने नानक से 'ओ३म्' शब्द का उच्चारण करने के लिए कहा। नानक ने 'ओ३म्' का उच्चारण तो किया,

परन्तु साथ ही ओ३म् का अर्थ भी पूछ लिया ।

बालक नानक के मुख से यह प्रश्न सुनकर पंडित गोपालदास हैरान हो गये । उन्हें हैरानी हुई कि छोटे से बालक के मन में यह जिज्ञासा क्योंकर हुई । बालक की जिज्ञासा का समाधान करते हुए पंडित गोपालदास ने उन्हें बताया कि ओ३म् सर्वरक्षक परमात्मा का नाम है । इस पर बालक नानक ने कहा कि पंडित जी मैं उसे 'सत् करतार' कहता हूँ अर्थात् जो हमारा सिरजनहार है, वही सच्चा परमात्मा है । कुशाग्र बालक की बात से पंडित गोपालदास बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने प्रधान पटवारी से कहा—

तुम्हारा पुत्र अत्यधिक मेधावी और ज्ञानवान है । मेरे पास जो भी ज्ञान था मैं उसे दे चुका हूँ । अब मेरे पास उसे देने को कुछ शेष नहीं है ।

पंडित जी की बात सुनकर मेहता कालूराय ने अपने पुत्र को फारसी की शिक्षा प्राप्त करने के लिए मौलवी कुतुबद्दीन के पास भेजा । मौलवी अपने तरीके से नानक को पढ़ाने लगे । बालक नानक भी बड़े मनोयोग से फारसी पढ़ने लगा । एक दिन मौलवी ने बालक नानक से 'अलिफ़' बोलने के लिए कहा । इस पर नानक ने 'अलिफ़' का अर्थ मौलवी से पूछा । मौलवी कुतुबद्दीन बालक नानक के प्रश्न से हैरान रह गए । क्योंकि वे स्वयं 'अलिफ़' का अर्थ नहीं जानते थे ।

तब नानक ने फारसी शब्द के माध्यम से 'अलिफ़' का अर्थ बताते हुए एक करतार की व्याख्या की । मौलवी हैरत से बालक नानक को देखता रह गया । तब उसने मेहता कालूराम से जाकर कहा—

मेहता ! तेरा बेटा तो खुद खुदा का रूप है । मैं उसे क्या पढ़ाऊँगा, यह तो सारी दुनियाँ को पढ़ा सकता है ।

इस प्रकार बालक नानक के ज्ञान की चर्चा बचपन में ही चहुं ओर फैल गई थी । उनके जीवन की कितनी ही ऐसी विलक्षण और चमत्कारिक घटनाएं हैं, जिनसे उनके चमत्कारिक बालक होने पर विश्वास होने लगा था । उन दिनों हिन्दुओं में यज्ञोपवीत संस्कार अर्थात् शरीर पर जनेऊ धारण करने का प्रचलन बहुत अधिक था । नानक को भी जनेऊ धारण करने के लिए कालू मेहता ने आयोजन किया और बिरादरी वालों को बुलावा भेज दिया । लेकिन नानक ने जनेऊ पहनने से साफ इन्कार कर दिया । उन्होंने कहा कि जनेऊ के

धागों पर उनका विश्वास नहीं है । गले में धागे डाल लेने से मन पवित्र नहीं हो जाता । मन को पवित्र करने के लिए अच्छे आचरणों की आवश्यकता है । यदि जनेऊ पहनकर भी कोई सद्-आचरण नहीं करता और शुद्ध नहीं रहता तो ऐसे जनेऊ से क्या लाभ है ? उन्हें तो ऐसा यज्ञोपवीत चाहिए–

जो दया की कपास, संतोष का सूत, जत की गांठ और सत्य से बटा गया हो ।
ऐसा यज्ञोपवीत न तो टूटेगा, न मैला होगा, न जलेगा ही ।

बालक नानक की दृढ़ता देखकर सभी चकित रह गए । फिर किसी का साहस नहीं हुआ जो उन्हें जनेऊ पहना सकता । वस्तुतः नानक को उन सभी झूठे आडम्बरों से चिढ़ थी, जिन्हें ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए बनाया हुआ था । उन्होंने देखा कि ब्राह्मणों ने बालक के जन्म से लेकर उसकी मृत्यु तक के समय को किसी न किसी कर्मकाण्ड से बांधा हुआ था और उन सभी कर्मकाण्डों की ओट में वे केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि करते थे । बालक नानक ने उन सभी कर्मकाण्डों का विरोध करने का बीड़ा उठाया और लोगों को एक 'सत् करतार' की उपासना में लगाने की अटूट साधना की ।

उन्होंने अनुभव किया कि पैसे वाले धनी और सम्पन्न लोग तो ब्राह्मणों द्वारा बनाए गए कर्मकाण्डों का पालन कर लिया करते थे और उनकी हर मांगों को पूरा करते थे, किन्तु ग़रीब लोगों के लिए उनकी मांगें पूरी करना कदापि सम्भव नहीं होता था । इस पर भी उन्हें उन निर्धन लोगों पर दया नहीं आती थी और वे तरह-तरह के डर दिखाकर उन्हें भयभीत किया करते थे ताकि वे कहीं से भी करें, उनकी मांगों की पूर्ति करें ।

नानक ने बचपन से ही इस तरह के अत्याचारों का विरोध करना आरम्भ कर दिया था । परिणामस्वरूप उनके विरोधी भी बहुत बने और उनके अनुयायी भी बहुत अधिक संख्या में उनके साथ जुड़ते चले गए । उनमें उनका बचपन का साथी भाई मरदाना, उनका पक्का समर्थक था । हालांकि वह जाति से मुसलमान था, परन्तु नानक का वह परम भक्त था । वह जीवन भर बिना किसी भेद-भाव के नानक के साथ रहा और नानक के बताए मार्ग पर चलता रहा । नानक जहाँ भी गए वह सदा उनके साथ रहा । गुरु नानक देव जी के विचारों और शिक्षा के प्रचार-प्रसार में भाई मरदाना का बहुत बड़ा हाथ है । भाई मरदाना रबाब के सुरों के साथ गुरु नानक के उपदेशों को लोगों

में गाया करते थे और इस प्रकार लोगों के अन्तस में उतर जाते थे। जब भी गुरु जी को अकाल पुरख से नया संदेश आता था वे कहते थे–

मरदाना रबाब छोड़ बाणी आई है।

2. सहज चमत्कार–

बचपन से ही नानक एकान्त प्रिय थे। वह प्रायः अकेले ही किसी पेड़ के नीचे बैठ जाते और ध्यानमग्न हो जाते। उनके पिता ने बालक नानक की उदासीनता देखकर उन्हें गाय-भैंस चराने के काम में लगा दिया। नानक अपने मित्र मरदाना के साथ पशुओं को लेकर जंगल में निकल जाते और पशुओं को चरने के लिए छोड़ कर किसी पेड़ के नीचे जा बैठते। सुबह से सांझ तक वे जंगल में ही रहते। इस दौरान प्रकृति के साथ सामंजस्य करने का उन्हें अवसर मिला और परमात्मा के विराट् स्वरूप को उन्होंने समीप से देखा। 'सत् करतार' के रहस्य को अच्छी प्रकार से जाना और समझा।

एक दिन ऐसे ही 'सत् करतार' के ध्यान में डूबे नानक एक पेड़ के नीचे लेट गए और उन्हें नींद आ गई। मित्र मरदाना पशुओं को लेकर दूर निकल गया था। कुछ देर बाद बालक नानक के चेहरे पर धूप पड़ने लगी। लेकिन तभी एक सफेद सर्प वहाँ आया और फन फैलाकर खड़ा हो गया। फन फैलाने से धूप चेहरे पर पड़नी बंद हो गई। जब तक धूप पड़ती रही सर्प फन फैलाए इधर से उधर सरकता रहा। उसी समय नगर का शासक राय बुलार घोड़े पर सवार उधर से निकला तो उसने वह दृश्य देखा। उस दृश्य को देखकर राय बुलार समझ गया कि वह बालक कोई साधारण बालक नहीं है बड़ा होकर यह बालक अवश्य या तो कोई सम्राट् बनेगा या फिर कोई महान् सन्त बनेगा। तभी बालक की नींद टूट गई तो सर्प झाड़ियों में सरक गया। राय बुलार घर लौटा और उसने यह बात अपने लोगों से कहीं। धीरे-धीरे यह चर्चा सारे नगर में फैल गई। लोग बालक नानक को कौतूहल की दृष्टि से देखने लगी। उस पर विशेष श्रद्धा रखने लगे। उसे चमत्कारी बालक समझने लगे।

इसी प्रकार की एक घटना और है–एक दिन नानक पशुओं को चराने जंगल में गए। पशुओं को खुला छोड़कर वे एक पेड़ के नीचे बैठ गए और 'सत् करतार' का स्मरण करने लगे। बेलगाम पशु एक किसान के खेत में घुस गए और फसल को नष्ट करने लगे। बालक नानक ने देखा कि बहुत सी

चिड़ियाँ पकी फसल के दानों को खा रही थीं। अद्‌भुत दृश्य था। नानक बड़े मनोयोग से पशुओं को खिलवाड़ करते और चिड़ियों को फसल चट करते देखते रहे। वे मस्त होकर नाचने लगे और गाने लगे–

राम की चिड़िया राम का खेत, खालो चिड़िया भर-भर पेट।

उसी समय खेत का किसान वहाँ आ पहुँचा और नानक को बुरा-भला कहने लगा। उसने पशुओं को खेत से निकाल बाहर किया और उनकी शिकायत करने राय बुलार के पास जा पहुँचा। राय बुलार ने किसान की शिकायत सुनकर नानक के पिता को बुलवाया और किसान की भरपाई करने के लिए कहा। तभी बालक वहाँ आ पहुँचे और राय बुलार से कहा कि किसान अपना खेत काट ले। इसे अपने खेत से जितने अनाज की आशा हो उससे जितना कम अनाज होगा उसे हम भर देंगे। राय बुलार ने किसान को समझा बुझा कर भेज दिया। किसान ने अपना खेत काट लिया। लेकिन उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसे जितने अनाज की उस खेत से आशा थी, उससे दुगुना अनाज उस खेत से हुआ था। वह आश्चर्यचकित रह गया और शर्म के कारण फिर राय बुलार के पास नहीं गया। उल्टे बालक नानक के पास जाकर क्षमा मांगने लगा। वह बालक के पैरों में गिर पड़ा और उसका भक्त हो गया। उस दिन से मेहता कालूराम ने बालक नानक को जंगल में पशु चराने भेजना बंद कर दिया।

नानक देव अब घर में ही रहने लगे। परन्तु किसी कार्य में उनका मन नहीं लगता था। वे प्रायः गुमसुम से रहते। जैसे उनके मन में कोई मंथन चल रहा हो। अपने बेटे की ऐसी दशा देखकर मेहता कालूराम को चिन्ता होनी स्वाभाविक थी। एक दिन उन्होंने अपने पुत्र से कहा–

बेटा! इस तरह से कब तक चलेगा? अच्छा हो तुम कोई व्यापार कर लो। किन्तु व्यापार सच्चा होना चाहिए। झूठ से कोई व्यापार नहीं पनपता।

3. सच्चा सौदा–

नानक देव ने सहमति दी तो मेहता कालूराम ने उन्हें 20 रुपए दिये और उनके साथ उनके बचपन के मित्र भाई बाला को भी भेज दिया। नानक देव भाई बाला के साथ व्यापार करने चल दिए। मार्ग में गांव चूहड़काना में उन्हें कुछ साधु मिले जो भूख-प्यास से बेहाल थे। ये भूखे-प्यासे तपस्या करने में लगे थे। उनसे बातें करने पर नानक देव को अनुभव हुआ कि इस तरह

भूखे-प्यासे रहकर तपस्या करने से कोई लाभ नहीं है । उन्होंने भाई बाला को नगर में भेजा और खाने का सामान मंगवाया । सभी साधुओं ने नानक देव द्वारा दिया गया भोजन ग्रहण किया और उन्हें आशीर्वाद दिया । भूखों को खाना खिलाकर नानक देव बहुत सन्तुष्ट हुए । उनके 20 रुपए खर्च हो चुके थे । उन्हें इस बात का संतोष था कि उन्होंने 20 रुपयों से सच्चा व्यापार किया था । बदले में उन्होंने बड़ा पुण्य कमाया था ।

नानक देव वापस अपने घर लौट आए । उनके पिता को जब पूरी बात का पता चला तो वे बहुत नाराज हुए और क्रोध में भरकर उन्होंने नानक को दो-चार चांटे जड़ दिये । इस बात का पता जब राय बुलार को चला तो उसने मेहता कालू को बुलाया और उसे बुरा-भला कहा । उसने 20 रुपये कालूराम को देते हुए कहा—

मेहता ! नानक आज से मेरा है । उसे कभी कुछ न कहना । वह जो भी तुम्हारी हानि करे, उसकी भरपायी मैं कर दूँगा ।

इतना कहकर राय बुलार का जी भर आया और उसकी आँखों से अश्रु बहने लगे । क्योंकि वह समझ चुका था कि नानक असाधारण बालक है ।

नानक देव की विद्वता का उदाहरण कई घटनाओं से मिलता है । एक बार वे गीता पढ़ रहे थे । तभी उधर से मेहता कालूराम और पंडित गोपालदास आ निकले । उन्होंने नानक देव से पूछ लिया कि वे क्या पढ़ रहे हैं । इस पर उन्होंने गीता पढ़ने की बात बताई । उन्होंने जब नानक देव से गीता सुनाने के लिए कहा तो उन्होंने पुस्तक एक ओर रख दी और कंठस्थ की हुई गीता को मुंहजबानी सुनाना आरम्भ कर दिया । गीता का इस प्रकार सस्वर पाठ सुनकर पंडित जी और उनके पिता मेहता कालूराम हैरान रह गए ।

मेहता कालूराम की चिन्ता बढ़ गई । उन्हें भय लगने लगा कि उनका बेटा कहीं साधु न हो जाए । इसलिए उन्होंने बालक नानक को उसकी बड़ी बहन नानकी के पास सुलतानपुर में भेज दिया । सुलतानपुर कपूरथला के पास वेई नदी के किनारे बसा था । नानकी का विवाह वहाँ के जयराम के साथ हुआ था । सुलतानपुर का नवाब एक मुसलमान लोदी था । नानकी का पति जयराम नवाब के यहाँ नौकरी करता था । वह अत्यन्त सज्जन और ईमानदार व्यक्ति था, नवाब उसे बहुत मानता था । मेहता कालूराम ने सोचा कि बहन के

पास जाकर नानक दुनियादारी सीख जायेगा और उसका ध्यान आध्यात्मिक बातों से हट जाएगा।

नानकी अपने छोटे भाई से बहुत स्नेह करती थी। उसने सहर्ष नानक को अपने पास रखा और अपने पति से कहलवाकर उसकी नौकरी भी नवाब लोदी के मोदी खाने में लगवा दी। नानक धीरे-धीरे बड़े होते जा रहे थे। बचपन पीछे छूटने लगा था। वे रोज सुबह होते ही मोदीखाने जा पहुँचते और देर रात तक काम करते रहते। उन्हें काम में लगा देख नानकी और जयराम को बड़ी प्रसन्नता होती। लेकिन उनकी यह प्रसन्नता शीघ्र ही गहरे सोच में परिवर्तित हो गई। कारण? नानक की दयानतदारी थी। मोदीखाने में वे किसी बात का भी हिसाब-किताब नहीं रखा करते थे। जो भी वहाँ आकर उनसे कुछ मांगता वे बिना किसी भेद-भाव के उसे दे देते थे। वे प्रायः कहा करते थे–

ना कोई हिन्दू ना कोई तुरक। इस संसार के सभी प्राणियों को एक अकाल पुरुख ने पैदा किया है। सभी प्राणी उसकी सन्तान हैं। यहाँ जो कुछ भी है सब उसी का है। यहाँ मेरा तेरा कुछ भी नहीं है।

उनकी वाणी को सुनकर आस-पास के लोग उनसे स्नेह करने लगे। धीरे-धीरे उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। भूखे-नंगों के ठठ के ठठ रोज मोदीखाने के बाहर आ जुटते। नानक सभी को उनकी आवश्यकता की चीजें बिना किसी मोल भाव के दे देते। नवाब के कर्मचारियों ने यह देखा तो वे बड़े फिक्रमन्द हो उठे। उन्हें लगा कि इस तरह तो नानक नवाब का सारा मोदीखाना खाली कर देगा। बेचारे जयराम को ही नुकसान की भरपाई करनी पड़ेगी। कुछ सोचकर वे सभी सुलतान लोदी के पास पहुँचे और नानक की शिकायत खूब नमक-मिर्च लगाकर की। लोदी ने उनकी बात सुनकर जयराम को बुलवाया और उसे मोदीखाने का हिसाब-किताब देखने के लिए भेजा। साथ में उसने कई दूसरे कर्मचारी भी कर दिए।

जयराम ने दूसरे कर्मचारियों के साथ मोदीखाने का हिसाब-किताब परखा और एक-एक चीज की नाप-तोल की गई। लेकिन उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मोदीखाने की कोई भी चीज कम नहीं हुई थी। हिसाब-किताब भी चौकस था। यह सब देखकर उन सभी कर्मचारियों के

चेहरे पीले पड़ गए, जो सुलतान लोदी के पास नानक की शिकायत करने गए थे। नवाब सुलतान लोदी ने शिकायत करने वाले कर्मचारियों को बुरी तरह फटकारा और उनसे कहा कि यदि भविष्य में किसी ने नानक की झूठी शिकायत की तो उसे कड़ा दण्ड दिया जाएगा।

नवाब की चेतावनी से नानक के विरोधी उन कर्मचारियों के दिलों में नानक के प्रति गहरी ईर्ष्या और द्वेष भड़क उठा। उन्होंने बदला लेने के लिए नगर में कट्टर मुस्लिम कटमुल्लाओं को नानक के विरुद्ध भड़काना आरम्भ कर दिया। वे अब हर समय नानक को नीचा दिखाने का प्रयत्न करने लगे। लेकिन नानक पर उनके द्वेष और ईर्ष्या का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। वे पहले की तरह ही अपने कार्य में निःस्वार्थ रूप से बिना किसी भेद-भाव के लगे रहे और जरूरतमंदों की मांगों को पूरा करते रहे।

नानक अब 18 वर्ष के युवा हो रहे थे। परन्तु युवा मन में किसी प्रकार का भी विकार उत्पन्न नहीं हो रहा था। वे उस समय भी अकाल पुरुष के स्मरण में अपना समय बिताते या फिर निर्धनों की सेवा में लगे रहते। उनकी इस दशा को देखकर उनकी बहन नानकी ने अपने पति से सलाह की कि नानक का विवाह कर दिया जाए तो वह अपनी घर-गृहस्थी में लग जाएगा। लेकिन नानक विवाह के लिए अभी तैयार नहीं थे। वे टालते रहे। परन्तु जब घर वालों का अधिक दबाव पड़ा तो सन् 1487 में, ज्येष्ठ मास की चौबीसवीं तिथि को बटाला निवासी मूलचन्द्र खत्री की बेटी सुलक्खनी के साथ उनका विवाह खूब धूम-धाम के साथ कर दिया गया। परन्तु सभी समारोह नानक देव के कहने पर बड़ी सादगी के साथ सम्पन्न किए गए। सदियों से चले आ रहे धार्मिक रीति-रिवाजों का उन्होंने बहिष्कार कर दिया। अकाल पुरुष को साक्षी मानकर उन्होंने अग्नि के समक्ष जीवन भर पति-पत्नी के रूप में साथ निभाने की प्रतिज्ञा की। विवाह के बाद भी नानक देव सुलतान में ही रहे और मोदीखाने में काम करते रहे।

4. तेरा-तेरा बस तेरा ही–

मोदीखाने में नानक देव माल तोलते उसमें एक-दो-तीन गिनते हुए तेरह तक पहुँचते। लेकिन 'तेरा' के बाद आगे नहीं गिनते थे। 'तेरा', 'तेरा' की गिनती उन्हें आगे जाने ही नहीं देती थी। भाव यही था कि यहाँ जो कुछ

भी है, सब तेरा है । इतना कहने भर से ही माल पूरा तुल जाता था । कभी किसी को माल कम तुलने की शिकायत नहीं हुई ।

नानक अपने आपको भगवान् का बनिया मानते थे । लोगों को कभी-कभी भ्रम होता कि नानक को तेरह से आगे गिनती नहीं आती । परन्तु वे मूर्ख भला यह कहाँ जान पाते कि नानक तो प्रभु का गुणगान करते हैं । वे तो उस 'अकाल पुरुष' का स्मरण करते हैं । वह हर बार यही कहते हैं कि यहाँ जो कुछ भी है वह सब उसका है । इसीलिए वह भगवान् से कहते हैं तेरा. ...तेरा । इस प्रकार वे उसे याद करते हैं और कहते हैं कि यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है । इस बात को नानक उन सभी को समझाना चाहते थे, परन्तु वे तभी समझते जब ईश्वर में उनका विश्वास होता ।

नानक इस प्रकार प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात कहते । लोगों के प्रश्नों के उत्तर देते । नानक देव के साथी भाई बाला और भाई मरदाना अपने रबाब के सुरों को लय-बद्ध करके उन शब्दों को लोगों को सुनाते और उन्हें मंत्रमुग्ध करते । इस प्रकार जन-साधारण में नानक की ख्याति दूर-दूर तक फैलती चली गई ।

लेकिन उनसे ईर्ष्या करने वाले भी कम नहीं थे । वे किसी भी तरह मोदीखाने पर अपना कब्ज़ा जमाना चाहते थे । लोगों की द्वेष भावना से नानक का मन आहत हो उठा और वे इस काम से मुक्त होने के लिए स्वयं ही सोचने लगे । वे किसी ऐसे अवसर की तलाश में थे कि उन्हें इस कार्य से बिना किसी द्वेष के ही छुट्टी मिल जाए ।

5. दर्शन निरंकार के–

नानक देव का प्रतिदिन का नियम था कि वे मुंह अंधेरे वेई नदी में स्नान करने जाया करते थे और नदी के किनारे एक वृक्ष के नीचे बैठकर निरंकार का ध्यान किया करते थे । उनके साथ उनका मित्र मरदाना भी नदी स्नान के लिए जाता था । एक दिन दोनों स्नान के लिए नदी में उतरे । मरदाना तो नहाकर किनारे आ गया और अपने कपड़े धोने लगा । लेकिन नानक नदी की बीच की धारा में आगे बढ़ गए और जहाँ पानी गहरा था, वहाँ उन्होंने डुबकी लगाई । डुबकी लगाने के बाद वे काफी देर तक बाहर नहीं आए । तब मरदाना का ध्यान उस ओर गया । वह विचलित हो उठा । वह काफी देर तक वहाँ बैठा

नानक के बाहर आने की बाट जोहता रहा । लेकिन नानक नहीं आए ।

अब तो मरदाना घबरा गया । उसे लगा कि नानक ने जल समाधि ले ली है । वह रोता पीटता नगर में आया और जयराम के घर जाकर उसने सारी बात बताई । उसकी बात सुनकर घर में रोना-पीटना आरम्भ हो गया । सारे नगर में यह बात जंगल की आग की भाँति फैल गई । सभी लोग नदी की ओर दौड़ पड़े जिसने सुना वही भाग खड़ा हुआ । वस्तुतः नानक की ख्याति इतनी फैल चुकी थी कि किसी को भी नानक का इस तरह डूबकर मर जाना सहन नहीं हुआ । नदी किनारे सारा नगर दहाड़ें मारकर रो रहा था । गोताखोरों ने दूर-दूर तक नदी को छान मारा, परन्तु नानक कहीं भी नहीं मिला ।

हार कर शोक संतप्त सभी वापस लौट आए । नानकी का बुरा हाल था । किन्तु वह बार-बार यही विलाप कर रही थी कि उसका नानक सिद्ध पुरुष है वह इस प्रकार नहीं मर सकता । सभी उसे समझाने का प्रयत्न करते, परन्तु सब व्यर्थ ।

इसी तरह दो दिन बीत गये । मरदाना रोज सुबह नदी किनारे जाता और वहाँ बैठकर रोता रहता । तीसरे दिन जब वह वहाँ गया तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नानक उसी वृक्ष के नीचे बैठे साधनारत है । उनके चेहरे से एक अजीब तरह का तेज प्रकट हो रहा था । चारों ओर प्रकाश का गोला तैर रहा था । मरदाना की आँखों में खुशी के आँसू बहने लगे । वह दौड़कर नानक के चरणों में गिर पड़ा और रोने लगा । नानक ने उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा—

पगले ! रोता क्यों है ? मैं तो सचखंड में निरंकार से मिलने गया था ।

मरदाना पलट कर नगर की ओर भागा और जाकर जोर-जोर से चिल्लाने लगा—

नानक जिन्दा है..... नानक जिन्दा है ।

उसकी आवाज़ सुनकर लोगों ने अपने घर छोड़ दिए और नदी की ओर भाग खड़े हुए । उनमें नानक के परिवार के लोग भी थे । बहन नानकी ने रुंधे गले से अपने पति से कहा—

मैंने कहा था कि मेरा भाई सिद्ध पुरुष है । वह जगत के कल्याण के लिए धरती पर आया है । उसे कोई मार नहीं सकता और न वह समय से पूर्व मर सकता है ।

नदी के किनारे पहुँच कर नानकी ने अपने भाई को बांहों में भर लिया और रोते हुए पूछने लगी–

भाई ! तू कहाँ चला गया था ?

नानक ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया–

बहन ! मैं तो निरंकार से मिलने सचखंड गया था । परमपिता परमात्मा वहीं रहते हैं ।

उन्होंने बताया कि निरंकार भगवान् के सत्य खण्ड की शोभा का वर्णन वे शब्दों से नहीं कर सकते । वहाँ की शोभा देखकर तो दृष्टि निहाल हो जाती है । वहाँ की शोभा का वर्णन जो करता है वह बाद में पछताता है कि उससे वहाँ का वर्णन ठीक प्रकार से नहीं हो सका ।

इतना होने पर भी नानक को अभी तक सन्तुष्टि प्राप्त नहीं हो रही थी । वे किसी एक सच्चे गुरु की तलाश में थे जो उन्हें परमात्मा के संसर्ग का सही मार्ग सुझा सके । किन्तु खोजने पर भी नानक को ऐसा कोई गुरु नहीं मिल सका । इसलिए उनका जीवन बिना गुरु के ही रह गया । वस्तुतः जो स्वयं गुरु है, उसे गुरु की आवश्यकता ही क्या है ? उन्होंने तो निरंकार को ही अपना गुरु माना था । वही उनकी सिद्धि थे, वही लक्ष्य थे और वही साधना भी ।

ੴ सतनामु करता पुरख निरभउ ।

निरवैर अकाल मूरत अजूनी सैभंग गुरु प्रसादि ।।

गुरु नानक और सिक्ख धर्म का यही मूल मंत्र है इसकी नींव पर ही सिक्ख धर्म का महल खड़ा किया गया है । यह धर्म गुरु नानक को अकाल पुरुष के समकक्ष स्वीकार करता है ।

नानक नदी के किनारे से उठकर अपने सर्मथकों और नगरवासियों के साथ नगर में आए और सीधे मोदीखाने पहुँचे । वहाँ पहुँच कर नानक ने मोदीखाने के दरवाजे सभी के लिए खुलवा दिए और घोषणा कर दी कि जिसे जो चाहिए यहाँ से ले जाए । मोदीखाना छोड़कर नानक श्मशान में जा बैठे ।

नानक की बात सुनकर लोग मोदीखाने पर टूट पड़े और जिसके हाथ जो लगा, वह लेकर भाग गए । वहाँ के कर्मचारियों ने मोदीखाने को इस प्रकार लुटते देखा तो वे दौड़े-दौड़े नवाब के पास पहुँचे और नानक की शिकायत की । लोगों की बात सुनकर नवाब आग-बबूला हो उठा । उसने तत्काल

जयराम को बुलाने एक व्यक्ति उसके पास भेजा। जयराम नवाब के दरबार में आया तो उसे सारी बात का पता चला। नवाब ने अपने व्यक्तियों को सच्चाई जानने के लिए भेजा। वहाँ पहुँचकर जब उन्होंने देखा तो मोदीखाना उसी तरह से भरा-पूरा था। वहाँ से एक वस्तु भी कम नहीं हुई थी। वे सभी बहुत घबराए। अपना-सा मुंह लेकर सभी नवाब के दरबार में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बताया–

हुजूर! मोदीखाने में तो सभी चीजें ज्यों की त्यों रखी हैं। उल्टे नानक के ही 700 सौ रुपए आपकी ओर निकलते हैं।

''फिर तुम लोगों ने झूठ क्यों बोला?'' नवाब क्रोध में भरकर बिफर पड़ा–

बार-बार उस व्यक्ति की शिकायत करते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती? जाओ, उसे इज्जत के साथ बुलाकर लाओ।

लेकिन हुजूर! हमने खुद अपनी आँखों से मोदीखाने को लुटते हुए देखा था। वहाँ एक भी चीज बाकी नहीं बची थी। हमें तो नानक कोई जादूगर लगता है।

''बको मत''! नवाब दहाड़ा–

तुम सब निकम्मे हो और नानक से जलते हो। दूर हो जाओ मेरी नजरों से।

सभी चुगलखोर कर्मचारी वहाँ से चल दिए और श्मशान में पहुँचकर नानक की खुशामद करने लगे। नानक नवाब के दरबार में पहुँचे। नानक को अपने सामने आया देखकर नवाब ने कहा–

नानक! इन चुगलखोरों ने तुम्हारी शिकायत की थी, पर वह झूठी निकली। मैंने इन्हें आगे के लिए सख्त ताकीद (निर्देश) दे दी है कि ये तुम्हारे काम में दखलंदाजी न करें। तुम्हें परेशान होने की जरूरत नहीं है। मोदीखाना तुम्हें ही संभालना है।

नवाब ने 700 रुपये नानक को देकर कहा–''तुम अपने ये रुपये रखो और मोदीखाने को संभालो।''

''नहीं नवाब साहब!'' नानक ने दृढ़ता से कहा–

मैं अब मोदीखाने का भार नहीं संभाल सकता।

''क्यों अब क्या हुआ?''

नवाब साहिब ! जो व्यक्ति अपने भंडार में से एक मुट्ठी अन्न भी किसी भूखे को मुफ्त में नहीं दे सकता, मैं उस व्यक्ति के मोदीखाने को संभालने के लिए पैदा नहीं हुआ हूँ । मुझे तो उस परमपिता परमात्मा ने किसी और कार्य के लिए धरती पर भेजा हैं मुझे अब वही कार्य करना है ।

सभी हैरानी से नानक का मुंह देखते रह गए । नवाब ने नानक से पूछा– ''नानक ! तुम्हें किस कार्य के लिए भगवान् ने धरती पर भेजा है ?''

मुझे अकाल पुरुष ने लोगों को बताने भेजा है कि हम सभी उस परमपिता की सन्तान हैं । हमारे बीच में न कोई छोटा है और न कोई बड़ा है, न कोई सवर्ण है और न कोई अछूत है, न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान है । हमें सभी को उस परमात्मा का अंश मानकर प्यार करना चाहिए । 'एक ओंकार' का जाप करना चाहिए और ईर्ष्या द्वेष को भूलकर निर्भयता के साथ परस्पर प्रेम करना चाहिए ।

''तुम्हें उस परमात्मा ने ऐसा करने के लिए कब और कहाँ कहा ?'' नवाब ने अपनी शंका प्रकट की ।

उस दिन जब मैं दो दिन वेई नदी में समाधि लगाकर परमात्मा के सचखंड में गया था । तब उन्होंने मुझे यह आदेश दिया था । अब मैं तुम्हारे मोदीखाने में नहीं, उस परमपिता परमात्मा के भंडारघर में काम करूँगा ।

6. पहचानें प्रभु क्यों जग आए

इतना कहकर नानक नवाब के दरबार में से निकलकर फिर से श्मशान में जा बैठे और निरंकार का जाप करने लगे । नानक ने लोगों से बात करना बंद कर दिया और परमात्मा का सुमिरन करते हुए अपना समय बिताने लगे । बाला और मरदाना उनके आसपास ही रहते । वे ही उनका हर समय ख्याल रखते । लेकिन वे तो किसी और दुनियाँ में ही रम गये थे । नानक के जीवन से जुड़ी इन घटनाओं ने उन्हें दूर-दूर तक सिद्ध पुरुष के रूप में स्थापित कर दिया था । लोग उनके दर्शनों को आते और चुपचाप चले जाते । मौनव्रत करते हुए उन्हें काफी समय बीत गया । अब बहन नानकी भी उन्हें तंग करती थी । उनकी पत्नी भी चुपचाप उनकी सेवा में लगी रहती थी । सभी श्रद्धा से उन्हें देखते और उनके बताए मार्ग पर चलते । हिन्दू और मुसलमानों में उन्होंने कोई भेद नहीं किया था ।

लेकिन नानक देव के शब्दों की गहराई तक लोग आसानी से नहीं पहुँच

पाते थे। उनकी हालत विचित्र थी और पागलों की तरह से वे व्यवहार करने लगे थे। वे घंटों समाधि में बैठे रहते और शून्य में ताकते रहते। लोग उनके बारे में तरह-तरह की बातें करते और जितने मुंह उतनी ही बातें होती रहतीं। लोगों को विश्वास हो चला था कि नानक ने श्मशान में भूत-प्रेतों को वश में कर लिया है और वे उन्हीं से बातें करते रहते हैं। नानक की ऐसी दशा देखकर नानकी और जयराम का चिन्तित होना स्वाभाविक था। उन्होंने कई बार उन्हें घर लाने की कोशिश की, पर वे सफल नहीं हो सके। बातें उड़ती-उड़ती नवाब के कानों तक भी पहुँचती। मोदीखाने की घटना के बाद से नवाव नानक के प्रति श्रद्धा रखने लगा था। वह स्वयं भी नहीं चाहता था कि नानक जैसा ईमानदार पुरुष इस प्रकार श्मशान में पड़ा रहे। इसलिए काफी सोच-विचार के बाद नवाब ने शहर काजी को बुलाया।

काजी साहब! नानक आपकी बहुत इज़्ज़त करता है। परन्तु इन दिनों वह श्मशान में पड़ा रहता है। लोग उसके बारे में तरह-तरह की बातें करने लगे हैं। मैं नहीं चाहता कि ऐसा भला इंसान श्मशान में रहकर अपनी ज़िन्दगी को बरबाद करे। मेरी इच्छा है कि आप वहाँ उसके पास जाएं और उससे पूछें कि वह वहाँ क्यों पड़ा रहता है। वह वापस अपने घर और काम पर क्यों नहीं आना चाहता। हो सके तो आप उसे समझा-बुझा कर वापस ले आएं।

काजी श्मशान पहुँचे और नानक से मिले। नानक की हालत को देखकर काजी को गहरा दुःख हुआ। काजी ने नानक से उसकी हालत के बारे में पूछा।

नानक! तुमने यह क्या हालत बना रखी है, तुम अपने घर जाना क्यों नहीं चाहते।

काजी साहब! लोग मुझे पागल और दीवाना कहते हैं। वास्तव में नानक तो अपने शाक का दीवाना हो चुका है। मैं उस निरंकार के अलावा किसी और को नहीं जानता। मेरा तो आदि भी वही है और अन्त भी वही है। बाकी सब झूठा है। ना कोई हिन्दू है, ना कोई मुसलमान है।

तुम ऐसा कैसे कह सकते हो? काजी ने पूछा।

काजी साहब! हिन्दू और मुसलमान को जैसा सच्चा होना चाहिए, वैसा वह नहीं है। सच्चा तो बस एक निरंकार है और बाकी सब उसी की सन्तान है। मैं भी न हिन्दू है और न मुसलमान हूँ। वैसे मैं हिन्दू भी हूँ और मुसलमान भी हूँ।

नानक की बातों से काजी का दिमाग़ गड़बड़ा गया। वह कुछ देर तक सोचता रहा और फिर बोला–

अगर तुम कोई भेद नहीं मानते तो क्या मस्जिद में नमाज पढ़ सकते हो?

क्यों नहीं? नानक उठकर खड़े हो गए और बोले–चलो, हम आज आपके साथ मस्जिद में नमाज पढ़ेंगे।

काजी नानक को लेकर नवाब के दरबार में आए। वहाँ से नवाब भी और अन्य मुसलमान कर्मचारी भी उन दोनों के साथ चल दिए। नगर में जिसने सुना वही मस्जिद की ओर चल दिया। लोगों ने हवा उड़ा दी कि नानक तो मुसलमान हो गया है। शहर के हिन्दू इस बात से चिन्तित हो उठे और बौखलाने लगे। जयराम भी परेशान हो उठे। लेकिन नानकी चिन्ता रहित स्थिर बनी रही। उसने जयराम को समझाया कि उसका भाई काजी के साथ नमाज पढ़ने नहीं गया है, वह उसे सच्चा रास्ता दिखाने गया है। मस्जिद में मुसलमानों की भारी भीड़ जमा थी। वे तो खुश हो रहे थे कि उन्होंने एक हिन्दू को मुसलमान बना लिया है और वह अब मस्जिद में नमाज पड़ेगा। नमाज का वक्त हुआ। सभी मुसलमानों के साथ नानक भी पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो गए। जैसे ही सभी मुसलमान सजदे में झुके, वे भी झुककर नीचे हुए ओर फिर पलथी मारकार वहीं बैठ गए और आँखे बंद कर लीं। नमाज के पश्चात् काजी और नवाब ने नानक को फर्श पर चुपचाप आँखें बंद किए बैठे देखा तो वे क्रोध में भर उठे। नवाब ने क्रोधित होकर कहा–

नानक! तुमने नमाज न पढ़कर दीने इस्लाम का अपमान किया है। तुम्हें इसकी कड़ी सजा मिलेगी।

नवाब साहब! आप गुस्सा थूक दीजिए। दरअसल मैं नमाज तो तब पढ़ता, जब यहाँ कोई नमाजी होता।

यह तुम क्या कह रहे हो? काजी बौखलाया।

मैं ठीक कह रहा हूँ काजी साहब! यहाँ जो लोग नमाज पढ़ने का ढोंग कर रहे थे, वे नमाज नहीं, अपनी-अपनी समस्याओं को सुलझाने की अल्ला ताला से मांग कर रहे थे।

ऐसा नहीं हो सकता। तुम झूठ बोल रहे हो। काजी आपे से बाहर होकर चीखने लगा। लेकिन नानक को क्रोध नहीं आया। वे शांत भाव से मुस्कराते रहे और बोले–

काजी साहब ! आप भी नमाज कहाँ पढ़ रहे थे ? आप तो अपनी नई ब्यायी घोड़ी और उसके बछड़े की सलामती की फिक्र कर रहे थे ।

नानक ने नवाब की ओर मुड़कर देखा और बोले–

नवाब साहब ! आप भी तो नमाज के जगह काबुल के घोड़ों की खरीदारी के बारे में सोच-समझकर परेशान हो रहे थे ।

नानक की बात सुनकर काजी और नवाब के चेहरों के रंग उड़ गए । वे उस वक्त सोच रहे थे कि नानक ने जो कहा, सच कहा था । उन्होंने नानक को एक पहुँचे हुए फकीर के रूप में देखा । उन्होंने तत्काल नीचे झुककर नानक के पैर पकड़ लिए । यह दृश्य देखकर वहाँ खड़े सभी मुसलमान हैरानी से उन्हें देखने लगे । नगर में यह समाचार तेजी से फैल गया और लोग नानक की जय-जयकार करने लगे ।

7. श्रीचन्द व लक्ष्मी दास का जन्म

इन्हीं दिनों सन् 1494 भाद्रपद सुदी नवमी को नानक की पत्नी ने पहली सन्तान को जन्म दिया । नानक ने उस बच्चे का नाम श्रीचन्द रखा । बाद में, गुरु नानक देव के स्वर्गारोहरण के उपरान्त इस पुत्र ने 'उदासीन संप्रदाय' की स्थापना की थी । वह बाबा श्रीचन्द जी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुआ । सन् 1496 फाल्गुन मास की 19 तारीख को नानक के दूसरे पुत्र लक्ष्मीदास का जन्म हुआ । जिनकी सन्तान बेदी गोत्र के नाम से जानी जाती है । संसार में आने के बाद इस मायावी संसार के सभी प्रपंचों के साथ सभी प्राणियों को जूझना पड़ता है । महापुरुष भी इससे बच नहीं पाते हैं । गुरु नानक जी की संसार यात्रा गृहस्थी में रहते हुए भी राजा जनक की भाँति जारी थी । वे गृहस्थ होकर भी गृहस्थ नहीं थे । सारी पृथ्वी को झूठ और मिथ्याडम्बरों में लिप्त देखकर उनका हृदय हाहाकार कर उठा था । सिक्ख धर्म के इस महापुरुष ने तब कहा था–

बाबा देखे ध्यान धरै, जलती सब धरती दिस आई ।

इस धरती को मिथ्याडंबरों की आग से बचाने के लिए ही गुरु नानक ने अपना सारा जीवन होम कर दिया था । अपने बच्चों और स्त्री का मोह त्याग कर वे लोककल्याण के लिए निकल पड़े थे । इस महायज्ञ में उनका एकमात्र विश्वस्त बचपन का साथी मरदाना था । बाबा नानक उपदेश देते थे और मरदाना उन्हें गा-गाकर लोगों को सुनाया करता था । मस्जिद वाली घटना के बाद गुरु नानक फिर से श्मशान में जा बैठे थे । वे ग़रीबों के हितैषी थे और

सम्पन्न अमीर लोगों से दूरी बनाए रखते थे। उनका ख्याल था कि अमीर लोग गरीबों का रक्त चूस-चूसकर ही इतने अमीर बने हैं। श्मशान में जो भी उनके पास आता था, उससे वे निर्धनों के प्रति हमदर्दी रखने की मांग करते थे। उनकी नजर में अमीर लोग अपने स्वार्थ के कारण ग़रीबों की ओर से सदैव अपनी आँख, अपने कान बंद रखते थे। उन्होंने एक बार कहा था–

मायाधारी अति अन्ना बोला

शब्द न सुनहीं बहु रोल घचोला।

इसका अर्थ यही है कि अमीर आदमी बहुत अधिक दौलत पाने के बाद अन्धा ही नहीं बहरा भी हो जाता है। परमपिता परमात्मा का नाम और निर्धनों की आर्त पुकार उसके कानों तक नहीं पहुँच पाती। यही कारण था कि नानक अमीरों से घृणा करते थे और अपने अनुयायियों से भी ऐसा करने के लिए कहा करते थे। नानक सभी से प्रेमपूर्वक मिलते थे और उन्हें संसार की मोह-माया और मायावी बन्धनों को त्यागने की शिक्षा देते थे। वे उन्हें निरंकार का स्मरण करने की प्रेरणा देते थे। अपनी बात को वे बड़े ही सीधे-सादे ढंग से कहा करते थे। इससे उनकी बात आम लोगों के हृदय में आसानी से गहराई तक उतर जाती थी। उनकी हर बात लोगों के हृदय में ईश्वरीय आदेश के रूप में ग्रहण की जाती थी। वे उनके उपदेश केवल सुनते ही नहीं थे, उन्हें अपने जीवन में अपने आचरण में उतार लेते थे। यहीं से उन्हें गुरु का पद प्राप्त होने लगा था। लोग श्रद्धा से गुरु नानक जी के बताए मार्ग पर चलने का प्रयत्न करते थे।

कुछ ही दिनों के श्मशान वास के दौरान उन्होंने अनुभव किया कि श्मशान की यह दुनियाँ बहुत छोटी है। उन्हें लोक-कल्याण के लिए और लोगों के बीच से ऊँच-नीच का भेद मिटाने के लिए, जनता के बीच चलकर जाना चाहिए। केवल इस नगर में ही नहीं, यहाँ से निकलकर विशाल संसार के मध्य जाना चाहिए। तभी वे भूले-भटके लोगों को सही मार्ग पर ले जाने का सच्चा प्रयास कर पायेंगे। आडम्बरों से भरे-पूरे इस समाज के मध्य, एक नए समाज की स्थापना का संकलन उन्होंने लिया और अपने शिष्यों के साथ वे देश भ्रमण को निकल पड़े। वे यह जान गए थे कि यदि निरंकार ईश्वर को पाना है तो उन्हें दर-दर की खाक छाननी पड़ेगी। निरंकार का आदेश पाकर ही वे घर-घर जाकर अलख जगाने लगी। उनका कहना यही था कि ईश्वर एक है और हम

सभी प्राणी उसी की सन्तान हैं । हमें सदैव एक दूसरे के प्रति सहृद रहना चाहिए और स्नेह भाव को अपनाना चाहिए ।

8. सो ही पालनहार

श्मशान त्यागकर वे अपनी बहन नानकी के घर आए । जहाँ उनकी पत्नी और दो पुत्र रहते थे । उन्होंने अपनी बहन से कहा–

बेबे ! अब मेरा यहाँ रहना नहीं हो पायेगा । सतगुरु निरंकार ने मुझे जो काम सौंपा है उसे पूरा करने के लिए मुझे यहाँ से जाना होगा ।

नानकी ने हैरानी और दुःख में भरकर नानक से पूछा–तो क्या तुम अपनी पत्नी और बच्चों को अकेला छोड़कर यहाँ से चले जाओगे ?''

बेबे ! जिस परमात्मा ने इन्हें इस संसार में भेजा है, वही इनका सच्चा पालनहार है । वही इनका पालन करेगा और वही इनकी रक्षा भी करेगा ।

नानक ने बड़े शान्त भाव से कहा–

इस संसार में अनेक ऐसे बन्दे हैं जो सच्चाई के पथ से भटक गए हैं । वे मिथ्याडम्बरों, कुरीतियों और सामाजिक बुराइयों के अंधेरे जंगल में भटक रहे हैं । सतगुरु निरंकार ने मुझे आदेश दिया है कि मैं उन्हें ज्ञान का प्रकाश दिखाकर सच्चाई का मार्ग दिखाऊँ । मोह-माया के सभी बन्धन झूठे हैं । इनसे मेरा कोई सरोकार नहीं है ।

गुरु नानक के घर छोड़कर जाने की बात जब उनके पिता और सास ससुर को पता चली तो वे सुलतानपुर आए और उन्हें समझाया । लेकिन जल्दी ही उन्हें अनुभव हो गया कि नानक संसारी पुरुष नहीं हैं । उन्हें रोकना असम्भव है । तब उन्होंने भी गुरु नानक को घर से जाने की आज्ञा दे दी । गुरु नानक अपने मित्र मरदाना के साथ इस संसार के अनजाने पथों पर निकल पड़े । उन्हें सदैव निरंकार का भरोसा रहता था । उन्हें लगता कि वे अपना नहीं निरंकार के आदेशों का पालन करने निकले हैं । उनके सम्मुख एक नहीं, आठ-आठ शत्रु थे, जिन्हें उन्हें परास्त करना था । उनका पहला शत्रु कसाई, लोभी तथा अन्यायी राजा था । दूसरा शत्रु जालिम नवाब थे । तीसरा शत्रु झूठे तपस्वी और मौलवी थे, चौथा शत्रु जातिवादी और अहंकारी ब्राह्मण थे,

पांचवा शत्रु पाखंडी साधु थे, छठा शत्रु चोर और डाकू थे, सातवां शत्रु कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे और आठवां शत्रु कुरीतियों का पालन करने वाला समाज था।

इन आठों शत्रुओं से गुरु नानक को अकेले ही लोहा लेना था। यह सारी लड़ाई उन्हें अपने ज्ञान और सद्नियमों रूपी हथियारों से लड़नी थी। गुरु नानक ने जब इस बिगड़े हुए समाज के विरुद्ध आवाज़ उठाई तो सारा का सारा कर्मकाण्डी समाज उनके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। जगह-जगह उनकी सभाओं में ईंट-पत्थरों से बौछार कराई गई। किन्तु एक निरंकार का सच्चा भक्त उनके प्रहारों से कहाँ डरने वाला था। ज्यों-ज्यों गुरु नानक का विरोध बढ़ता गया, त्यों-ज्यों वे और भी ज्यादा मजबूत होते गए। कोई उन्हें उनके नियमों से नहीं डिगा सका।

9. मजदूरी बिच दूध समाया–

गुरु नानक घूमते-घूमते एक बार ऐमनाबाद पहुँचे। वहाँ भाई लालो नाम का एक निर्धन बढ़ई रहता था। गुरु नानक देव जी भाई लालो के यहाँ जाकर रुके और उसी के साथ बैठकर, जैसा मिलता खाने लगे।

उन दिनों किसी निर्धन शूद्र के यहाँ किसी उच्च कुल के व्यक्ति का ठहरना बड़ा बुरा माना जाता था। परन्तु गुरु नानक ने लोगों की किसी बात की परवाह नहीं की। तभी की बात है, ऐमनाबाद के एक बहुत बड़े धनवान जागीरदार मलिक भागों ने अपने यहाँ एक बहुत बड़े ब्रह्मभोज का आयोजन किया। वहाँ तरह-तरह के पकवान और हलवा-पूरी बनाए गए। महायज्ञ के उपरांत सार्वजनिक भोज कराया गया। दूर-दूर से आए तपस्वी, साधु, फकीर और ज्ञानी व्यक्ति भोजन करके जागीरदार मलिक भागो को आशीर्वाद देकर चले गए। उसी समय मलिक भागो को पता चला कि गुरु नानक बुलाने के बाद भी भोज में शामिल नहीं हुए। मलिक भागो को बड़ा बुरा लगा। उसने जबरन गुरु नानक को वहाँ बुलवाया और पूछा–

यहाँ बड़े से बड़ा साधु भोजन करके गया है, परन्तु आप बुलाने पर भी यहाँ नहीं आए। यहाँ का हलवा-पूरी छोड़कर आप उस नीच लालो के यहाँ सूखे

टुक्कड़ तोड़ रहे हो। ऐसा क्यों किया आपने?

गुरु नानक ने अभिमानी मलिक भागो को उत्तर देने से पहले थोड़ा हलवा-पूरी मंगाया और भाई मरदाना को भेजकर लालो के यहाँ से सूखी रोटी मंगवाई। उसके बाद उन्होंने हलवा-पूरी को मुट्ठी में भींचकर निचोड़ा तो लोगों को यह देखकर हैरानी हुई कि उसमें से खून की बूंदे टपक रही हैं। उसके बाद गुरु नानक ने लालो के यहाँ की सूखी रोटी को मुट्ठी में बंद करके निचोड़ा तो उसमें से दूध की धार बह निकली।

मलिक! तूने जिस यज्ञ का आयोजन किया है और हलवा-पूरी का भोजन लोगों को कराया है, वह ग़रीबों का खून चूसकर कराया है। इस आयोजन में छोटे-बड़े हर व्यक्ति से तूने जबरन धन वसूल किया था। इसीलिए उन गरीबों का खून पीने मैं यहाँ नहीं आया। दूसरी ओर तूने देखा कि लालो की सूखी रोटी में प्रेम और श्रद्धा का दूध प्रवाहित होता है। इसीलिए मैं उसके पास रहता हूँ।

गुरु नानक की बात सुनकर मलिक भागो भयभीत होकर कांपने लगा। वह गुरु नानक के पैरों पर गिर पड़ा और रोते हुए बोला—

हे गुरुदेव! मुझे क्षमा करें। मैंने अब तक बहुत पाप किए हैं। अब मैं उनका प्रायश्चित करना चाहता हूँ। कृपा करके मुझे अपनी शरण में ले लीजिए।

गुरु नानक ने मलिक भागो को उठाया और कहा—

मलिक भागो! तेरा प्रायश्चित यही है कि तू अपनी सारी सम्पत्ति ग़रीबों में बाँट दे और अपनी मेहनत की कमाई पर अपना गुजारा चला।

मलिक भागो ने वैसा ही किया जैसा गुरु नानक ने उससे कहा। उसने अपनी सारी सम्पत्ति ग़रीबों में दान कर दी और खुद मजदूरी करके अपना और अपने परिवार का पेट पालने लगा। पहली बार अनुभव हुआ कि शोषण करके इकट्ठी की हुई दौलत, सच्ची नहीं होती। सच्ची दौलत दीन-दुःखियों की सेवा और सहायता करने पर प्राप्त होती है। गुरु नानक के संसर्ग से उसे शान्ति और कल्याण का रास्ता मिल गया था। एक दिन गुरु नानक समाधि

लगाए बैठे थे कि अचानक विचलित होकर उन्होंने अपनी आँखें खोल दीं। वे भाई मरदाना से बोले—भाई मरदाना! अभी-अभी मैंने यहाँ की धरती को जलते हुए देखा है। कल यहाँ की धरती पठानों के रक्त से लाल हो जाएगी।

उन्होंने तत्काल भाई लालो को बुलाया और उससे कहा मुगल सुल्तान बाबर एक बड़ी सेना लेकर काबुल से यहाँ आ रहा है। वह यहाँ खून की नदियां बहा देगा। तुम जल्द से जल्द इस शहर को छोड़कर कहीं दूर चले जाओ। गुरु नानक का आदेश पाते ही लालो ने ऐमनाबाद छोड़ दिया और दूर एक गांव में जा बसा। कुछ दिन बाद बाबर की सेना ने ऐमनाबाद पर भयानक आक्रमण किया और हजारों लोगों को गाजर-मूली की तरह काट डाला। सारा नगर लाशों से पट गया और नालियां बेगुनाह लोगों के रक्त से भर गई।

10. गुरु नानक का बाबर को आदेश—

बाबर के क़त्लेआम से घबराकर वहाँ के साधु संत सिर पर पैर रखकर भाग खड़े हुए। किन्तु गुरु नानक वहाँ से नहीं गए। वे बाबर का खून-खराबा देखते रहे। जब उनसे अत्याचार सहन नहीं हुआ तो उन्होंने आगे बढ़कर बाबर के घोड़े की लगाम थाम ली। बाबर बहुत क्रोध में था उसके हाथ में खून से सनी नंगी तलवार थी। किन्तु गुरु नानक देव प्राणों के भय से जरा भी विचलित नहीं हुए। गुरु ने बाबर से ललकार कर कहा—

बाबरा! बाबरा! ठहर और बंद कर अपना अत्याचार।

गुरु नानक का तेजस्वी चेहरा देखकर बाबर रुक गया। उसने अपनी तलवार म्यान में रख ली और सिपाहियों को हुक्म दिया—

इसे पकड़कर क़ैदखाने में डाल दो।

गुरु नानक को और भाई मरदाना को पकड़ कर सिपाहियों ने कैद कर लिया। वहाँ और भी बहुत सारे कैदी थे। वे सभी चक्की पीस रहे थे। गुरु नानक को भी चक्की पीसने के लिए दी गई। तब गुरु नानक ने भाई मरदाना से रबाब बजाने और शब्द गाने के लिए कहा। भाई मरदाना ने रबाब की सुमधुर धुन बजाना शुरू किया और गाने लगे। बाकी सारे कैदी और सिपाही

मंत्र-मुग्ध से गीत सुनने लगे। तभी किसी ने जाकर बाबर से सारी बात बताई तो बाबर भी हैरान रह गया। बाबर ने गुरु नानक से कहा—

आपने न शराब पी और न जवाहरात ही मंजूर किये। कोई भी ऐसी खिदमत बतलाइये जिसको करके मैं अपनी रूह को खुश कर सकूँ।

गुरु नानक जी ने कहा—

अगर तू हमारी सेवा ही करना चाहता है तो सारे क़ैदियों को छोड़ दे और लूटपाट बंद करा दे। यही हमारी सबसे बड़ी सेवा होगी।

बाबर ने तत्काल सारे कैदियों को छोड़ दिया और लूट-पाट बंद करने का आदेश दे दिया। वस्तुतः सच्चे संत इसी प्रकार जनता के हित के लिये हर कष्ट सहने और हर त्याग करने को तैयार रहते हैं। उस समय आम साधु-फकीर भंग आदि पीने के आदी थे। बाबर थोड़ी सी भांग लेकर गुरु नानक के पास पहुँचा और भांग पेश की। इस पर गुरु नानक ने बाबर से कहा कि वे भांग नहीं पीते। उन्होंने कहा—

सारे नशे संसार के उतर जाए प्रभात।
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।।

संसार के सारे नशे तो सुबह होते ही उतर जाते हैं, किन्तु नानक को जिस निरंकार के नाम की खुमारी चढ़ी है, वह तो दिन-रात बनी रहती है। वह नशा सभी नशों से ऊपर है। गुरु नानक के वचन सुनकर बाबर का क्रोध शान्त हो गया। उसने गुरु नानक और उनके शिष्यों को छोड़ दिया। गुरु नानक वहाँ से देश भ्रमण के लिए निकल पड़े। समाज में फैली धार्मिक कुरीतियों और मिथ्या कर्मकाण्डों को देखकर गुरु नानक का मन सदैव से ही विचलित हो जाता था। उन्होंने ढोंगी ब्राह्मणों और उनके कर्मकाण्ड को जड़ से उखाड़ने का संकल्प लिया था। इसीलिए वे दर-दर भटक रहे थे। एक बार हरिद्वार में गंगा स्नान के समय उन्होंने अनेक लोगों को गंगा की धारा में खड़े होकर सूर्य को जल अर्पित करते देखा। उन्होंने एक व्यक्ति से पूछा—

तुम यहाँ क्या कर रहे हो भाई?

उस व्यक्ति ने जलांजलि देते हुए कहा—

मैं अपने पितरों को जल अर्पित करके उनकी प्यास बुझा रहा हूँ।

गुरु नानक उसकी बात ठीक से नहीं समझ सके तो उसने समझाया—

सूर्य की ओर जल अर्पण करने से स्वर्ग में बैठे पितरों के पास पहुँच जाता है। पितृ वंश में पितरों को जल अर्पण करने की यह अति प्राचीन परम्परा है।

गुरु नानक उसकी बात पर मन ही मन हँसे और कपड़े उतार कर जल में घुस गये। उन्होंने पश्चिम की ओर मुंह किया और अंजलि में जल भर कर अर्पण करने लगे। तब उस व्यक्ति ने हैरान होकर उससे पूछा–

भाई! तुम पूर्व दिशा की जगह पश्चिम की ओर मुंह करके जल क्यों अर्पित कर रहे हो?''

इस पर गुरु नानक ने हँसकर उत्तर दिया–

भाई! मैं तो पंजाब का रहने वाला हूँ। वहाँ मेरे खेत हैं। उन्हें पानी की बहुत आवश्यकता है। मैं इस प्रकार अपने खेतों को पानी दे रहा हूँ।

अरे ! पागल हो गये हो? भला यहाँ से जल देने से तुम्हारे खेतों को पानी कैसे पहुंचेगा?

क्यों भाई! जब तुम्हारा अर्पण किया जल तुम्हारे पितरों तक पहुँच सकता है तो सौ-दो-सौ कोस दूरी पर मेरे खेतों तक क्यों नहीं पहुँच सकता?

गुरु नानक की बात सुनकर वह व्यक्ति सोच में पड़ गया।

इस तरह गुरु नानक के जीवन के साथ अनेक ऐसी घटनाएँ जुड़ी हैं जिनके द्वारा उन्होंने अपनी आध्यात्मिक शक्ति के चमत्कार दिखाए हैं और सीधे-सादे उपदेशों से कर्मकाण्डी लोगों का मार्गदर्शन भी किया है।

11. अलौकिक आरती

पूर्व में जगन्नाथपुरी नाम का हिन्दुओं का एक बड़ा तीर्थ है। एक बार गुरु नानक घूमते हुए वहाँ जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने पुजारी को भगवान् जगन्नाथ की मूर्ति के सामने थाली में दीये जलाकर आरती करते हुए देखा। गुरु नानक अपने दोनों शिष्यों, भाई बाला जी और भाई मरदाना के साथ आरती होने तक चुपचाप बैठे रहे। आरती समाप्त होने पर पुजारी ने उनसे आरती में खड़े न होने का कारण पूछा तो गुरु नानक ने मुस्कराकर उत्तर दिया।–

भाई! हमारे भगवान् की आरती तो हर पल और हर घड़ी होती रहती है। रात-दिन होती रहती है। देखो, यह आसमान कितना बड़ा थाल है। इसमें सूरज और चन्दा दीये हैं। भाल में सितारों के रूप में पुष्प और मोती रखे हैं। यह शीतल पवन भगवान् पर चंवर डुला रही है। तमाम वनस्पति फल-फूल न्योछावर करती है। कल-कल करते झरने जलाभिषेक करते हैं। अब आप ही

बताइए इससे बढ़कर निरंकार भगवान् की आरती और कौन-सी हो सकती है? क्या आप ऐसी आरती कर सकते हैं?

अतः जगन्नाथ जी पहुँचने पर उन्होंने मंदिर के सम्मुख परमात्मा की जो आरती उतारी थी, जरा उसे देखिए–

गगन में थाल रविचंद्र दीपक बने
तारिका-मंडल जनक मोती
धूप मलिआनलो पउण चतरो करै
सगर वनराइ फूलंत जोती।
कैसी आरती होई भवखंडना तेरी आरती
अनहता सबद बाजंत भेरी।

उस प्रभु की आरती के लिये इस आकाश रूपी थाल में सूर्य व चंद्रमा दो दीपकों की भाँति प्रकाशित हैं। तारागण मोती के समान चमक रहे हैं। मलयानिल सुगंध फैला रहा है और वायु चंवर कर रही है। वनों में फूले हुए समस्त फूल उसके भेंट स्वरूप हैं और अनहद नाद शंख अथवा भेरी की भाँति बज रहा है। यही उस प्रभु की सच्ची आरती है। गुरु नानक की अमृतवाणी को सुनकर पुजारी और वहाँ उपस्थिति सभी जन कृतार्थ हो गये और गुरु जी से सतनाम का मंत्र लेकर जाप करने लगे।

जगत् के जीवों का कल्याण करते हुए और संसार के भूले-भटके को सच्ची राह दिखाते हुए गुरु नानक एक बार बंगाल के चटगांव इलाके में जा पहुँचे। वहाँ एक ढोंगी साधु लोगों से कहता था कि वह तीनों लोकों का ज्ञाता है। गुरु नानक उससे मिलने पहुँचे तो वह बड़ी भारी भीड़ के सम्मुख भजन-कीर्तन कर रहा था। आँखें उसकी बंद थीं। लोग उसके साथ कीर्तन करते हुए झूम रहे थे। उस साधु के सामने एक बड़ी हांडी रखी थी, जिसमें ढेर सारे चांदी के रुपए भरे थे और स्वर्ण आभूषण भी पड़े थे। गुरु नानक ने आगे बढ़कर हांडी को उठाया और उस साधु की पीठ के पीछे रख दिया। उसके बाद वे उसके सामने आकर बैठ गए। कुछ लोगों ने यह सब देखा, परन्तु उस समय कुछ न बोले। कीर्तन समाप्त हुआ तो साधु ने अपनी आँखें खोलीं।

आँख खुलते ही उसकी सबसे पहली नजर उस हांडी के स्थान पर पड़ी। लेकिन वहाँ हांडी न देखकर वह चौंका और चिल्लाने लगा–यहाँ रखी

हांडी को किसने उठाया है? जल्दी से बताओ वरना सभी पाप के भागी बनोगे। सीधे नर्क में जाओगे।

उसकी बात सुनकर सब लोग सन्न रह गये। लेकिन गुरु नानक उठे और उसके बोले–

साधु महाराज! आप तो तीनों लोकों के ज्ञाता हैं। आप जब अपनी पीठ के पीछे रखी हांडी को नहीं देख पाए तो तीनों लोकों के ज्ञाता कैसे हैं?

गुरु नानक की बात सुनकर लोग हँसने लगे। साधु ने चौंककर अपनी पीठ के पीछे रखी हांडी को देखा तो उसने चैन की सांस ली। लेकिन उसकी पोल खुल चुकी थी। उसके ढोंग का पर्दाफाश होते ही लोगों ने उसकी ओर से मुंह मोड़ लिया और सभी गुरु के अनुयायी हो गये।

12. सज्जनता का बिखराव–

गुरु नानक एक ग्राम में गये। वहाँ के निवासियों ने बड़ा आदर किया– गुरु नानक ने चलते समय आशीर्वाद दिया–

उजड़ जाओ।

फिर वे दूसरे ग्राम में गये तो वहाँ के लोगों ने उनका बहुत अपमान किया। गुरु नानक ने आशीर्वाद दिया–

आबाद रहो

शिष्यों ने पूछा कि आपने आदर करने वालों को उजड़ जाओ और अपमान करने वालों को आबाद रहने का उलटा आशीर्वाद क्यों दिया।

इस पर गुरु नानक ने कहा कि यदि सज्जन लोग उजड़ेंगे तो सज्जनता फैलायेंगे और यदि दुष्ट लोग एक ही स्थान पर आबाद रहेंगे तो सर्वत्र अशांति नहीं पैदा करेंगे। अतः उनकी एक स्थान पर रहने में ही भलाई है।

13. खुदा कहाँ नहीं है–

एक बार गुरु नानक यात्रा करते हुए मुसलमानों के तीर्थ मक्का पहुँच गए। लम्बे सफर की थकान ने उन्हें और उनके शिष्यों, भाई बाला और भाई मरदाना को घेर लिया था। वे तीनों सड़क के किनारे एक पेड़ की छाया में लेट गए और सो गए। तभी उधर से बातें करते हुए दो मुसलमान निकले। उन्होंने

देखा कि गुरु नानक काबे की ओर पैर करके सो रहे हैं। उन्होंने गुरु नानक को जगाया और कहा, भाई! काबे की ओर पैर करके मत सोओ। यह इस्लाम के विरुद्ध है। इस पर गुरु नानक बोले–

भाई! मुझे तो अपने चारों ओर काबा ही काबा दिखाई दे रहा है। अगर तुम कर सकते हो तो मेरे पैरों को उस ओर घुमा दो

तब तक वहाँ अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गई थी। सभी आश्चर्य से यह अजीब तमाशा देख रहे थे। जब गुरु नानक ने कहा–भाइयो! ख़ुदा तो कुदरत के जर्रे-जर्रे में निवास करता है। वह हर दिशा में मौजूद है। तुम जिसे चमत्कार समझ रहे हो, वह तुम्हारा भ्रम है। यह चमत्कार नहीं, सच्चाई है। ख़ुदा किसी एक तरफ नहीं, सब तरफ है। वह किसी एक का नहीं, सभी प्राणियों का है। वह जड़-चेतन, सभी में मौजूद है।

इसके अतिरिक्त आप की रुकुनुद्दीन नामक एक काज़ी से भी मुलाक़ात हुई दोनों में रुहानी विषयों पर गोष्ठी हुई। काज़ी रुकुनुद्दीन ने गुरु नानक देव जी से पूछा कि जहाँ उस परमात्मा का निवास है वह स्थान कैसा है। गुरुजी ने काज़ी को उत्तर दिया कि परमात्मा मानव शरीर के अंदर रहता है किसी मंदिर, मस्जिद, गिरजे आदि में नहीं। परमात्मा की सच्ची दरगाह का विस्तारपूर्वक नकशा खींचा। गुरु जी ने परमात्मा का निज घर की एक बड़े महल से तुलना की जिसकी अपनी विशेष बनावट है। इस महल के 12 बुर्ज (हाथों और पैरों की जोड़ी), 9 दरवाजे (दो आँखें, दो कान, दो नासिका, मुँह और दो गुप्त इंद्रियां) 52 कंगूरे (32 दांत और 20 नाखून) और दो खिड़कियां (आँखें) इसके 5 चौकीदार (ज्ञानेन्द्रियां) और 25 कारिंदे (प्रकृतियाँ) हैं। यह इतना सुन्दर महल है कि देवी-देवता भी इसमें रहने के लिए तरसते हैं।

गुरु नानक की बातों का मक्का के निवासियों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। वे उन्हें फरिश्ता समझ कर उनका सम्मान करने लगे। मक्का से गुरु नानक बग़दाद चले आए। बग़दाद में उन दिनों खलीफा का शासन था। वह ग़रीब लोगों को बहुत सताता था और उनसे जबरन धन वसूली करता था। जब गुरु नानक ने उस खलीफा के बारे में सुना तो वे अपने शिष्यों के साथ

उस रास्ते में जा बैठे, जिधर से खलीफा की सवारी निकला करती थी ।

गुरु नानक ने सड़क पर बिखरे कंकड़-पत्थरों को इकट्ठा किया और उनका ढेर एक किनारे लगाकर पास ही बैठ गए । भाई मरदाना और भाई बाला कंकड़ बीन-बीन कर लाते रहे और ढेरी पर डालते रहे । तभी खलीफा की सवारी उधर से निकली तो खलीफा ने वह मंजर देखकर गुरु नानक से पूछा–

अरे ! तुम क्या कर रहे हो ?

भाई ! यह मेरी दौलत है । गुरु नानक ने उत्तर दिया–

जब मैं मर जाऊँगा, तब अपनी इस दौलत को अपने साथ लेता जाऊँगा ।

गुरु नानक की बात पर खलीफा और उसके दरबारी हँसने लगे । खलीफा अपनी हँसी रोककर बोला–

ऐसा भी कभी होता है ? कौन अपनी दौलत अपने साथ ले जाता है ।

गुरु नानक मुस्कुराए और बोले–

भाई ! इसे मैं उसी तरह ले जाऊँगा, जिस तरह आप अपनी दौलत को अपने साथ ले जाएंगे ।

गुरु नानक की बात सुनकर खलीफा शर्मिंदा हो उठा । उसने उसी समय हाथ उठाकर ऐलान कर दिया कि वह अपने पास कुछ नहीं रखेगा । सारी दौलत, जो उसने ग़रीबों का खून चूस-चूस कर एकत्र की है, ग़रीबों में बाँट देगा । खलीफा गुरु नानक के पैरों में गिर पड़ा । उसे लगा कि उसके सामने कोई बहुत बड़ा फरिश्ता खड़ा हुआ है । वह उन्हें आदरपूर्वक अपने महल में ले आया और उन्हें एक ऐसा चोगा भेंट किया । जिस पर क़ुरान की आयतें लिखी हुई थीं ।

गुरु नानक कुछ दिन बगदाद में रहकर वापस अपने देश हिन्दुस्तान लौट आए । खलीफा द्वारा दिया गया चोगा आज भी 'डेरा बाबा नानक' के गुरुद्वारे में रखा हुआ है । हर वर्ष हज़ारों सिख उस चोगे के दर्शनों के लिए वहाँ जाते हैं और गुरु नानक के उपदेशों का स्मरण करते हैं ।

14. धारो सत् को यही श्रेष्ठ है–

इस प्रकार गुरु नानक ने चार बार लम्बी-लम्बी यात्राएं की । बीच-बीच में वे अपने परिवार वालों से भी मिलने आते रहे और उन्हें दर्शन देकर निहाल करते रहे । उनकी यात्राओं का मुख्योद्देश्य अपने उपदेशों का प्रचार-प्रसार

करना तो रहता ही था, लोगों के साथ मिलकर उनकी समस्याओं का निवारण करना भी होता था। उन्होंने कभी भी आम लोगों से अलग अपना स्थान निश्चित् नहीं किया था। वे सभी के थे और सभी उनके थे। मानव धर्म ही उनका सबसे बड़ा धर्म था और उनके धर्म का अर्थ ही यही था कि जो सच्चा और श्रेष्ठ है उसे अपने हृदय में धारण किया जाए। उनकी मान्यता थी कि इस चराचर जगत् में निरंकार से सच्चा और श्रेष्ठ और कौन हो सकता है? वह दाता है, सच्चा पातशाह है और सबको प्रेम करने वाला है।

एक बार की बात है कि गुरु नानक अपने दोनों शिष्यों के साथ किसी जंगल से होकर गुजर रहे थे। अचानक भाई मरदाना गुरु जी से बोला कि उसे जोर की भूख लगी है। लेकिन उस जंगल में भोजन कहाँ से आता। गुरु जी ने उसे समझाया कि कोई गांव आने दो। वहाँ भोजन का प्रबन्ध हो जाएगा। परन्तु गुरु की लीला देखिए। उनकी बात सुनकर भाई मरदाना बिगड़कर रुक गया और बोला–

आपको जहाँ जाना है आप जाइए। मैं तो भोजन की तलाश में जाता हूँ।

गुरु नानक और भाई बाला ने उसे बहुत समझाया परन्तु वह नहीं माना और गुरु का साथ छोड़कर चला गया। गुरु नानक और भाई बाला वहीं रुक गये। मरदाना घोर बियाबान जंगल में अकेल चला जा रहा था। उस जंगल में कोड़े नामक एक भयंकर राक्षस रहता था जो लोगों को भूनकर खा जाता था। उसने मरदाना को अकेले देखा तो उसे पकड़ लिया और उसे अपने स्थान पर ले आया। वहाँ उसने आग जलाई और एक बड़े कड़ाहे में तेल भरकर उबालने लगा। वह मरदाना को तेल में पकौड़े की तरह तलकर खाना चाहता था।

तेल खूब गर्म हो गया तो उसने मरदाना को पकड़कर उठा लिया। उधर गुरु नानक अपनी समाधि में बैठे वह सारा दृश्य देख रहे थे। उन्होंने एक गहरी सांस छोड़ी और उठ खड़े हुए। राक्षस ने मरदान को उबलते तेल में डाल दिया। लेकिन उसे यह देखकर घोर आश्चर्य हुआ कि मरदाना के शरीर पर उस उबलते तेल का जरा भी प्रभाव नहीं पड़ा। मरदाना को भी तेल बहुत ठण्डा लगा। मन ही मन वह अपने गुरु को स्मरण कर रहा था और उनसे

अपने को बचाने की प्रार्थना कर रहा था । उसे पश्चाताप भी हो रहा था कि वह गुरु का साथ छोड़कर क्यों आया ? तब गुरु नानक ने ही अपने शिष्य की पुकार सुनी थी और अपनी शक्तियों से उसे बचाया था ।

कौड़ा राक्षस जब हैरानी से मरदाना की ओर देख रहा था, तभी गुरु नानक और भाई बाला वहाँ आ पहुँचे और कौड़ा राक्षस से कहा–

जीव को मारकर खाना बहुत बड़ा पाप होता है । परमात्मा ने सभी को जीवन इसीलिए दिया है कि वह परोपकार करे ।

गुरु नानक के उपदेशों का राक्षस पर बड़ा प्रभाव पड़ा । उसने हाथ जोड़कर गुरु नानक से अपने पापों के लिए क्षमा मांगी और उसने जीव हत्या न करने की कसम खाई । भाई मरदाना ने भी गुरु नानक से क्षमा मांगी और कहा कि यह उसकी गलती थी, जो वह जरा सी भूख सहन नहीं कर सका और उसने उनका साथ छोड़ दिया । परन्तु गुरु नानक तो उसे शिक्षा देना चाहते थे । वे अपने शिष्यों के अवगुणों पर ध्यान कहाँ देते । मुस्करा कर उन्होंने मरदाना को साथ लिया और चल दिए । इस प्रकार कौडा राक्षस और सज्जन ठग जैसे पापी भी गुरु नानकदेव जी प्रेरणा से सत्यवादी बने ।

जगह-जगह घूमकर लोगों का उद्धार करते हुए गुरु नानक देव एक बार करतारपुर आए । दूर-दूर से संगतें गुरु जी के पास आने लगीं । उस समय तक गुरु नानक देव का यश दूर-दूर तक फैल गया था । गुरु नानक देव ने यहाँ सर्वप्रथम 'गुरुगद्दी' की स्थापना की और अपने हाथों से खेती करके सार्वजनिक लंगर की प्रथा डाली । इस लंगर में सभी छोटे-बड़े बिना किसी भेदभाव के एक साथ भोजन करते थे और स्वयं ही अपने बर्तन साफ करते थे । यहाँ पर संसार यात्रा के समय जो वेश गुरु नानक ने धारण किया था, उतार दिया । उन्होंने संसारी गृहस्थ के कपड़े पहने और लोगों को उपदेश देना प्रारंभ किया ।

15. मति दीन्हीं सिद्धन को नानक–

एक बार किसी ने गुरु नानक देव जी को खबर दी कि व्यास दरिया की ओर अचल बटाले में योगियों का एक भारी जमावड़ा लगा है । वहाँ बड़ा भारी मेला भी लगा है । योगियों के भ्रमजाल में वहाँ के ही नहीं दूर-दूर से आए लोग

भी फंसे हैं । लोगों का कहना है कि उनके पास बहुत सी चमत्कारिक सिद्धियां हैं जिनसे वे भोली-भाली जनता को बहकाते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं ।

उस व्यक्ति की बात सुनकर गुरु नानक देव अपने शिष्यों और समर्थकों को लेकर बटाले पहुँच गए । वहाँ पहुँचकर उन सिद्धों से उनकी खूब धर्म संबंधी चर्चा हुई । सिद्धों ने गुरु नानक देव पर अपना प्रभाव जमाने के लिए कितने ही यौगिक चमत्कार दिखाए । आग की वर्षा कराई गई और बादलों से पानी बरसाया गया । कई योगी वृक्ष पर बैठकर आकाश में उड़ते दिखाई दिए । एक भंगरनाथ नाम के योगी ने तो हाथ बढ़ाकर आकाश के तारों को तोड़ना शुरू कर दिया ।

सिद्धों के ऐसे अद्‌भुत चमत्कारों को देखकर गुरु नानक देव के साथ आए उनके समर्थक और शिष्य मरदाना भयभीत दिखाई देने लगे । तभी गुरु नानक देव ने अपने पैरों की खड़ाऊं निकाली और उन्हें आदेश दिया कि इन सिद्धों के दिमाग जरा ठीक कर दो । आदेश पाते ही खड़ाऊं ने अपने अनेक रूप धारण किए और आकाश में उड़कर खटाखट सिद्धों के सिरों पर बरसने लगीं । सिद्ध जिधर भी भागते, खड़ाऊँ उसी ओर जाकर उनकी ठुकाई करती । हार कर सभी सिद्ध पिट-पिटाकर गुरु नानक के चरणों में गिरकर क्षमा मांगने लगे । तब गुरु नानक देव ने सिद्धों को क्षमा करते हुए कहा—

देखो सिद्धो ! तुम्हारी ये तांत्रिक ऋद्धि-सिद्धियां ज्ञान के मार्ग की बाधक हैं । तुम इनके चक्कर में पड़कर न केवल अपना जीवन नष्ट कर रहे हो, बल्कि भोली-भाली जनता को भी गुमराह कर रहे हो । जो पुरुष मान-अभिमान और प्रतिष्ठा की कामना से रहित होकर निरंकार परमात्मा का स्मरण करता है, वही परम पद को प्राप्त करता है । परमात्मा उसे अपना सान्निध्य प्रदान करता है उसे ज्ञान देता है, माया के प्रपंच से दूर रखता है ।

इस प्रकार सिद्धों को सही मार्ग पर लगाकर गुरु नानक देव करतारपुर लौट आए और लोगों को कृषि-कर्म का भेद समझाने लगे । उन दिनों जिला फिरोजपुर में, नागे की सराय में चौधरी लहणा सिंह नाम का एक व्यक्ति रहता

था । वह माता का बड़ा भक्त था । प्रतिवर्ष वह पहाड़ों में स्थित चिन्तपूर्णी देवी के दर्शनों के लिए जाया करता था । उसके साथ, उसके आस-पास के बहुत से लोग भी संगत करके जाया करते थे । एक बार गुरु नानक देव की महिमा सुनकर वह अपनी संगत के साथ करतारपुर होकर जाने लगा । गुरु नानक देव की वाणी सुनकर उसका मन गद्‌गद हो उठा । उसने प्रेमपूर्वक गुरु नानक देव की सेवा करने का निश्चय किया और वहीं रुक गया ।

16. साहित्य सृजन–

श्रीगुरुग्रंथसाहिब में श्री गुरु नानक देव जी की वाणी के 958 शब्द हैं । आपकी मुख्य वाणियाँ 'जपुजी', 'आसा दी वार', 'सिद्ध गोसाई', 'दखणी ओंकार' आदि है । रुहानी उपदेश की गहराई और सार्थकता के अतिरिक्त भाषा की सुन्दरता और वर्णन की निपुणता के गुण आपकी वाणी को श्रेष्ठ काव्य के रूप में महान् साहित्यकार का स्थान देते हैं । शब्दों के चुनाव और प्रत्येक शब्द की मधुर गीतात्मकता की दृष्टि से आपकी गणना संसार के सभी काल के महान् कवियों में की जाती है । वे स्वयं अपने कवित्व एवं प्रतिभा से अनजान थे । वे स्वयं को उस अकालपुरुष के शब्द का प्रचारक मानते थे । श्री गुरुग्रंथसाहिब की रागों में बांधी गई वाणी में से श्री गुरुनानक देव जी वाणी को 20 रागों में रखा गया है । वस्तुतः आप की वाणी मूल रूप में आध्यात्मिक भावों से परिपूर्ण है । इसको अलौकिक काव्य का दर्जा दिया गया है । परन्तु इसमें लौकिक काव्य के सब उत्तम गुण भरपूर मिलते है ।

17. कौतुक तुम्हरे तुम ही जानो–

बहुत दिनों तक की गई उसकी सेवा से प्रसन्न होकर अपने अन्त समय में गुरु नानक देव ने भाई लहण को ही 'गुरुगद्दी' सौंपने का ऐलान कर दिया । इस पर भारी विवाद उठ खड़ा हुआ । गुरु नानक देव की पत्नी अपने बड़े बेटे को 'गुरुगद्दी' सौंपना चाहती थी । लेकिन गुरु नानक देव ने स्पष्ट इन्कार कर दिया । उन्होंने कहा कि श्रीचन्द में इतनी बड़ी जिम्मेदारी उठाने की सामर्थ्य नहीं है । तब उसने अपने छोटे-बेटे को 'गुरुगद्दी' देने को कहा । लेकिन गुरु नानक देव 'गुरुगद्दी' को अपने घर की जागीर बनाने के सख्त खिलाफ थे ।

उनकी दृष्टि में योग्य व्यक्ति ही इस गद्दी का हकदार हो सकता था ।

पत्नी के जिद करने पर गुरु नानक देव ने योग्य व्यक्ति की परीक्षा लेने के लिए एक बर्तन को किसी गंदे और गहरे पानी में फेंक दिया । उन्होंने अपने दोनों सुपुत्रों से बर्तन को निकालकर लाने के लिए कहा । परन्तु उनका उत्तर था कि उस बर्तन को निकालकर लाने की क्या आवश्यकता है ? घर में बर्तनों की क्या कमी है । वैसे भी अब अन्धेरा हो गया है । कल दिन में किसी सेवक को भेजकर निकलवा देंगे । उनका उत्तर सुनकर गुरु नानक देव ने भाई लहणा से बर्तन निकालकर लाने के लिए कहा । तत्काल भाई लहणा ने कपड़ों समेत उस गन्दे पानी में छलांग लगा दी और बर्तन निकाल अच्छी तरह साफ करके गुरु जी के चरणों में रख दिया । तब गुरु जी ने अपनी पत्नी को समझाया–

देखा भाग्यवान ! जिस व्यक्ति में गिरे हुए और दूषित विचारों से भरपूर आदमी को पाप की कीचड़ में से निकालकर स्वच्छ और परिमार्जित करने की शक्ति नहीं है और जो गुरु के प्रति सच्चा समर्पित सेवक नहीं है । वह इस गद्दी का हकदार कैसे हो सकता है ? तेरे दोनों पुत्र अहंकारी हैं और उनमें सेवा भाव नाम मात्र को भी नहीं है । वे कैसे इस गद्दी के अधिकारी हो सकते हैं ? यह भाव लहणा में है । इसीलिए मैंने उसे इस गद्दी के योग्य माना है ।

किन्तु गुरु नानक देव की पत्नी अभी भी सन्तुष्ट नहीं हुई थी । तब गुरु नानक देव ने एक परीक्षा और ली । एक सर्द रात में जबकि कड़ाके की ठंड पड़ रही थी । तेज हवाएं चल रही थीं । रात का तीसरा प्रहर आरम्भ होने वाला था । लोग रजाइयों में दुबके पड़े थे । बाहर निकलने की किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी । तब गुरु नानक देव ने अपने पुत्रों से कहा–

उठो बेटा ! देखो सुबह होने वाली है । तुम दरिया पर जाओ और जाकर मेरे मैले कपड़े धो लाओ । कल संगत में मैं इन्हें पहनूँगा ।

गुरुदेव की बात सुनकर दोनों लड़के क्रोध में भरकर बिफर पड़े–

पिता जी ! आपका बुढ़ापे में दिमाग़ चल गया लगता है । सर्दी के मारे लिहाफ से हाथ बाहर नहीं निकाला जा रहा है और आप हमें नदी पर कपड़े धोने भेज रहे हैं । नहीं, हम नहीं जाएंगे ।

तब गुरु नानक ने भाई लहणा को कपड़े धोकर लाने को कहा तो लहणा तत्काल उठ खड़ा हुआ और मैले कपड़े लेकर नदी की ओर चला गया। वहाँ जाकर उसने सारे मैले कपड़े धो डाले और फैलाकर हवा में सुखा भी दिए। दिन निकलते ही भाई लहणा कपड़े लेकर हाजिर हो गया।

इस घटना के पश्चात् गुरु नानक देव की पत्नी और पुत्रों ने कुछ नहीं कहा। लेकिन सन्देह अभी भी उनके मन में बना रहा। तब एक दिन गुरु नानक देव जी ने पागलों जैसा स्वांग रचा और डण्डा उठाकर जंगल की ओर जाने लगे। उनके पीछे जो भी आता, उसे वे डण्डा मारकर भगा देते। लेकिन फिर उन्होंने अपनी झोली में से निकालकर बहुत-सी अशर्फियां वहाँ बिखेर दीं। उनमें से कुछ उन अशर्फियों को उठाकर चलते बने। चलते-चलते वे एक जंगल में पहुँचे। वहाँ एक मुर्दा पड़ा था। उसकी ओर देखकर गुरु जी ने आदेश दिया कि जो यह मुर्दा खाएगा वही मेरे साथ रह पाएगा। गुरु नानक देव की बात सुनकर सभी सहम गए और पीछे हट गए। लेकिन भाई लहणा वहीं खड़ा रहा। उसने गुरु जी से पूछा– ''गुरु जी! आप आज्ञा करें, मैं इस लाश को पैरों की ओर से खाऊं या सिर की ओर से?''

''सिर की ओर से खा।'' गुरु जी ने कहा और एक चादर उस लाश पर डाल दी।

भाई लहणा आगे बढ़ा और उसने सिर की ओर से जैसे ही चादर उठाई तो वह आश्चर्य से देखता रह गया। वहाँ लाश की जगह एक कड़ाही रखी थी, जिसमें गर्मा-गर्म हलवा रखा था। इस कौतुक को देखकर दूसरे लोग भी पास आ गए और आश्चर्य से देखने लगे। तब गुरु जी ने भाई लहणा से कहा–

लहणा! यह कड़ाह प्रसाद लोगों में बाँट दे और तू भी खा।

18. अंगद को गुरुगद्दी देना

लहणा ने प्रसाद बाँटना आरम्भ कर दिया। लेकिन वह खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहा था। अन्त में गुरु के आदेश पर वह कड़ाह प्रसाद मछलियों को खिला दिया गया। सभी गुरु जी की जय-जयकार करने लगे। गुरु जी अपने शिष्यों के साथ वापस लौट आए। कुछ दिन बाद जब उन्हें अपना अन्त समय निकट आया जान पड़ा तो सारी संगत के सामने उन्होंने

अपना उत्तराधिकारी भाई लहणा को बना दिया। बड़ा भारी जलसा हुआ। लंगर लगा। दूर-दूर से संगतें आकर जुड़ीं। गुरु जी ने भाई लहणा को गद्दी पर बैठाकर पाँच पैसे और एक नारियल देकर तिलक कर दिया। उसी दिन से भाई लहणा, गुरु अंगद देव हो गए। गुरु नानक ने सारी संगत से कहा–

भाई अंगद मेरे अंगों का ही अंश है। यह मेरा ही दूसरा रूप है।

गुरु नानक ने **"किरत करो, वंड छको, नाम जपो"** का उपदेश देकर सारी मानवता का मार्ग दर्शन किया। इस प्रकार गुरु अंगद देव को गद्दी सौंपने के पश्चात् 22-9-1539 ई० को करतारपुर (पाकिस्तान) में 71 वर्ष की आयु में गुरु नानक देव ज्योति जोत समा गये और अंत समय उन्होंने जोरों का उद्घोष किया था–

नानक शाह फकीर हिन्दू का गुरु मुसलमान का पीर।

19. गुरु नानक देव जी की वाणी की व्याख्या–

1. **ੴ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु**
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि।।
आदि सचु जुगादि सचु।।है भी सचु नानक होसी भी सचु।।1।।
सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार।।चपै चुप न होवई
जे लाइ रहा लिव तार।।भुखिया भुख न उतरी जे
बंना पुरीआ भार।।सहस सिआणपा लख होहि त इक
न चलै नालि।।किव सचिआरा होईए किव कूड़ै तुटै पालि।।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।।1।।

–महला-1 पृ० 1

प्रस्तुत शब्द श्रीगुरुग्रंथसाहिब जी का सर्वप्रथम शब्द है। इसमें बताया गया है कि परमात्मा एक है। वह एकमेव अद्वितीय है। सारा श्रीगुरुग्रंथसाहिब इसकी व्याख्या है। वह सत एवं शाश्वत है। वह सबका कर्त्ता एवं पिता है। न वह किसी से डरता है और न वह किसी को डराता है। उसे किसी से वैर नहीं है। यह अकाल पुरख, अजर, अमर एवं अविनाशी है। वह अपने अस्तित्व के लिये किसी दूसरे पर निर्भर नहीं करता है। उसका

प्रकाश स्वयं से हुआ है। ऐसे परमात्मा की प्राप्ति केवल गुरुकृपा से ही होती है। उसका अस्तित्व अनादि है। वह सदा से था, सदा से है और सदा रहेगा। क्योंकि यह समयातीत है। उसका विचार युगों तक सोचने से भी नहीं हो सकता। युगों तक चुपचाप समाधि लगाकर उसका चिन्तन करते रहो परन्तु उसका पारावार नहीं पाया जा सकता। सभी पुरियों का राज्य करने से भी उसका ज्ञान नहीं हो सकता। हज़ारों प्रकार की चतुराई भी व्यक्ति को पार नहीं लगा सकती है। व्यक्ति झूठ की दीवार को गिराकर उस सत्य प्रभु की अनुभूति कैसे करें? इसके लिए केवल एक ही मार्ग है कि उसके हुकम के अनुसार जीवन व्यतीत करे। उस तक पहुँचने का केवल यही मार्ग है। जैसे एक उर्दू शायर ने लिखा है–

राज़ी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।
हमारी न कुछ आरजू है न जुस्तजू है।

इसी प्रकार ओशो ने भी लिखा है–

जो लिखा है वह होगा। –एक ओंकार सतनाम

2. **जा तू ता मै सभु को तू साहिबु मेरी रासि जीउ।।**
तुधु अंतरि हउ सुखि वसा तूं अंतरि साबासि जीउ।।
भाणै तखति वडाईआ भाणै भीख उदासि जीउ।।
भाणै थल सिरि सरु वहै कमलु फूलै आकासि जीउ।।
भाणै भवजलु लंघीऐ भाणै मंझि भरीआसि जीउ।।
भाणै सो सहु रंगुला सिफति रता गुणतासि जीउ।।
भाणै सहु भीहावला हउ आवणि जाणि मईआसि जीउ।।
तू सहु अगमु अतोलवा हउ कहि कहि ढहि पईआसि जीउ।।
किआ मागउ किआ कहि सुणी मै दरसन भूख पिआसि जोउ।।
गुरसबदी सहु पाइआ सचु नानक की अरदासि जीउ।।2।।

–सूही महला 1 पृष्ठ 762-63

हे प्रभु ! तू ही मेरे लिये सब कुछ है, तू ही मेरी पूंजी, सच्ची सम्पत्ति है, तू मेरे अन्तर में है क्योंकि जब हृदय में तेरा साक्षात्कार एवं अनुभूति होती है तभी मुझे सच्चा सुख मिलता है और जब तू मेरे हृदय में प्रकट हो जाता है तभी मुझे सर्वत्र बढ़ाई मिलती है। तेरे हुकम से राज-सिंहासन का सामान मिलता है और जब तेरी आज्ञा होती है तो उदासीन बनकर घर-घर जाकर भीख भी मांगनी पड़ती है। तेरी आज्ञा से ही मरुस्थल में फूल खिल जाते हैं। तेरी आज्ञा से ही संसार-सागर को पार किया जा सकता है। प्रभु ही आनंद है और उसकी आज्ञा से ही मैं (आत्मा) गुण-निधि परमात्मा की स्तुति में लग जाती हूँ। उसकी आज्ञा एवं पूर्व कर्मों से आत्मा आवागमन के चक्र में फंस जाती है। हे प्रभु ! तू ही अगम्य एवं अतुलनीय है। अतः मैं (आत्मा) तेरे गुणों का गान करके तेरी शरण में चली जाती हूँ। मुझे केवल तेरे दर्शनों की भूख एवं प्यास है। इसके अतिरिक्त क्या मांगू क्या कहूँ एवं क्या सुनूं? गुरु के उपदेश द्वारा ही मैंने प्रभु कांत को पाया है अर्थात् उस निराकार शक्ति की अनुभूति की है। वह परमात्मा सत्यस्वरूप है। यही नानक की प्रार्थना है अर्थात् हमें केवल एक ही परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करनी चाहिए।

गुरु अंगद देव जी

31-3-1504 ई० - 29-3-1552 ई० (47 वर्ष 11 महीने 28 दिन)

2. गुरु अंगद देव

सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक देव जी के पश्चात् गुरु अंगद देव जी 'गुरुगद्दी' पर विराजमान हुए। गुरु अंगद देव अपने सेवाभाव के उत्कृष्ट स्वरूप के कारण ही इस गद्दी के हकदार बने थे। सिक्ख धर्म में सेवा भाव को सबसे ऊँचा स्थान दिया गया है। यहाँ प्रत्येक सिक्ख बिना किसी भेद-भाव के सेवा कार्य के लिए तत्पर रहता है। इस धर्म में प्यार, भक्ति, पारस्परिक दृढ़ विश्वास और सेवा-भाव, मोक्ष प्राप्ति के साधन माने गए हैं। गुरु पद पर आसीन होने वाले व्यक्ति में, इन चारों गुणों का होना अत्यावश्यक है।

गुरु अंगद देव में ये चारों गुण विद्यमान थे। जनमानस के प्रति प्रेमभाव, प्रत्येक जीव के प्रति दया भाव, गुरु और निरंकार के प्रति दृढ़ विश्वास और भक्ति तथा गुरु के कथन को परमेश्वर का कथन मानकर उसे जीवन में ढालने के लिए तत्पर रहना, गुरु अंगद देव के विशेष गुण थे। गुरुवाणी में भी प्रेम, भक्ति, दृढ़ विश्वास और सेवा भाव की विस्तार से चर्चा प्राप्त होती है। एक स्थान पर गुरु नानक कहते हैं–

रे मन, ऐसी हरि सियों प्रीति कर जैस मछली नीर।

भक्त को परमात्मा के साथ मन को इस प्रकार लगाना चाहिए जैसे मछली जल से प्रेम करती है। गुरुवाणी में सेवा के विषय में एक स्थान पर कहा गया है–

सेवा करत होये निहकामी। तिस को होत परापत स्वामी।।

जो व्यक्ति निष्काम भाव से सेवा कार्य में लगता है उसे निरंकार स्वामी की प्राप्ति सहज ही हो जाती हैं परन्तु बिना विश्वास के प्रेम, भक्ति और सेवा में भी दृढ़ता नहीं आती। इष्ट के प्रति दृढ़ विश्वास का होना अत्यावश्यक है।

गुरु अंगद देव जी के जीवन का लक्ष्य विश्वास की इस कसौटी पर खरा उतरता है। गुरु अंगद देव जी का बचपन का नाम लहणा था। वे एक सुन्दर बालक थे। सभी उनसे प्यार करते थे। उनके माता-पिता का नाम दयाकुंवारी और फेरुमल था। दोनों पति-पत्नी धार्मिक विचारों के थे। जिला फिरोजपुर के एक गांव 'मते की सराय' में फेरुमल खत्री का पुश्तैनी मकान था। यहाँ पर फेरुमल खत्री किराने की एक दुकान चलाया करते थे। गांव में उनका घर, एक सम्पन्न घर कहलाता था।

1. जन्म और बाल्यकाल –

31-3-1504 ई० को बालक लहणा का जन्म मत्ते दी सराय (फरीदकोट) में हुआ था। बालक के जन्म पर परिवार के लोगों ने खूब खुशियां मनाईं और गरीबों को खैरात बाँटी। अपने पुत्र को देखकर पति-पत्नी फूले नहीं समा रहे थे। फेरूमल मां भगवती के अनन्य उपासक थे। वे प्रतिवर्ष गांव की संगत के साथ चिन्तपूर्णी देवी के दर्शन को जाया करते थे। माँ भगवती ने उनकी अरदास सुनी थी और उन्हें लहणा जैसा पुत्र प्रदान किया था। गुरु अंगद देव के बचपन में उनके माता-पिता के धार्मिक संस्कारों का व्यापक प्रभाव पड़ा था। लड़कपन के साथ ही वे भी अपने परिवार वालों के साथ माता के दर्शनों को जाने लगे थे और यह क्रम उनके बड़े होने तक निरन्तर बना रहा था।

लेकिन जिन लोगों का जीवन परमात्मा के लोककल्याण के लिए निश्चित् किया होता है, उनका जीवन अत्यन्त सहज नहीं हुआ करता। उनके जीवन में अनेक ऐसी उथल-पुथल हुआ करती है, जो उनके जीवन का परोपकारी स्वरूप निश्चित् करती हैं। उनके जीवन में घटने वाली वे सभी घटनाएं उन्हें उनके लक्ष्य की ओर धकेलने लगती हैं। लहणा के जीवन में भी ऐसा ही हुआ था।

2. जब छाड़ी निज मातृभूमि–

अभी वे बालक ही थे कि उन्हें स्थान परिवर्तन करना पड़ा। वस्तुतः उस इलाके का हाकिम एक मुसलमान था, जो बड़ा ही क्रूर और लालची था। जब कभी उसे पता चलता कि अमुक व्यक्ति काफी धनी है तो वह एक झटके में ही उसकी सारी दौलत लूट लेता था और उसे कंगाल बनाकर छोड़ दिया करता था। उसका अधिकांश कहर सम्पन्न हिन्दू घरानों पर ही टूटा करता था। इसी तरह फेरुमल खत्री की सम्पन्नता उसके कारिन्दों की आँखों में भी खटकने लगी। उन्होंने हाकिम के कान भरने शुरू कर दिये। फिर क्या था। जालिम हाकिम ने फेरूमल की सारी दौलत लूटकर उसे दर-दर का भिखारी बनाने की योजना बना डाली। किन्तु तभी इत्तफाक से फेरूमल खत्री को हाकिम के इरादों का पता चल गया। फेरुमल खत्री ने रातों रात अपनी धन-दौलत इकट्ठी की और कुछ कीमती सामान एक छकड़े में भरकर रात के

अन्धेरे में ही चुपचाप गांव से पलायन कर दिया। किसी को कानों कान खबर तक नहीं होने दी। फेरूमल की एक बहन अमृतसर के पास खडूर गांव में रहती थी। रातों-रात चलकर फेरूमल उस जालिम हाकिम के इलाके से बाहर निकल आए और एक दिन सपरिवार खडूर जा पहुँचे। बहन ने अपने भाई के परिवार का खूब आदर-सत्कार किया और उन्हें वहीं रहकर व्यापार करने की सलाह दी।

अपनी बहन और बहनोई की सहायता से खडूर में ही फेरूमल बस गए और वहाँ उन्होंने फिर से करियाने की दुकान खोल ली। इस प्रकार लहणा को बचपन में ही अपनी मातृभूमि से दूर होना पड़ा। परन्तु फेरूमल ने प्रतिवर्ष माता के दर्शनों के लिए जाने का अपना नियम नहीं तोड़ा था। बालक लहणा भी उनके साथ जाया करता था। धीरे-धीरे बालक लहणा बड़ा होता गया। उन दिनों बच्चों का विवाह बचपन में ही कर दिया करते थे। लहणा अभी पन्द्रह वर्ष की आयु के ही हुए थे कि उनके पिता ने 1519 ई० में लहणा का विवाह कर दिया। लहणा की पत्नी का नाम खीवी देवी था। वह खडूर के ही देवीचन्द खत्री की बेटी थी। खीवी बड़ी सुन्दर, सुशील और सुघड़ थी।

विवाह के उपरांत भी लहणा पूर्ववत् धार्मिक कार्यों में लगे रहे। वे माँ भगवती का विधिपूर्वक अनुष्ठान करते और हर वर्ष चिन्तपूर्णी माता के दर्शनों को जाते रहे। साथ ही वे अपने पिता के कारोबार में भी हाथ बंटाते रहे। उनकी पत्नी खीवी देवी भी लहणा के विचारों के अनुरूप ही आचरण करने में अपने आपको लगाए रखती। सास-ससुर की सेवा करना उसका नित्य कर्म था। अपने इस सेवा कर्म को ही वह अपना धर्म मानती थी।

विवाह के पांच वर्ष के बाद सन् 1524 में, लहणा की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। लहणा ने उसका नाम दासू रखा। दासू का अर्थ है 'दास' अर्थात् जो परमात्मा और मां भगवती का सेवक है। इस प्रकार सेवा-भाव को लहणा ने न केवल अपने तक ही सीमित रखा, उसे स्मरण रखने के लिए अपने पुत्र का नाम ही दास रख दिया। उसके बाद एक-एक करके लहणा के यहाँ बीबी अमरो और उसके बाद पुत्र दातू हुआ। मां भगवती अमर है। इसीलिए पुत्री तो माता का ही रूप है, लहणा के परिवार में अमरो कहलाई और दूसरा पुत्र दाता या दान का प्रतीक 'दातू' बना। इस प्रकार लहणा के परिवार में

धार्मिक भावनाएं सन्तान में भी आरोपित होती गई । पुत्र दातु के बाद बीबी अणोखी का जन्म हुआ । वास्तव में लहणा के परिवार की यह ऐसी अनोखी दुनियाँ थी जो उसे हर पल और हर क्षण, माता के अनोखे दरबार का सुमिरन कराती रहती थी ।

माता की भक्ति में ही लहणा के मन को सच्ची शान्ति प्राप्त होती थी । गृहस्थ जीवन का पालन करते हुए भी वे माता के प्रभाव से कभी विलग नहीं हुए । खडूर के निवासियों के मध्य उनके सद्व्यवहार और धार्मिक आस्थाओं का ऐसा प्रभाव फैला कि लोग लहणा के परिवार में आत्मिक स्नेह और आदर करने लगे । लोगों ने उन्हें अपने गांव का मुखिया ही मान लिया था ।

यद्यपि घर में किसी चीज की कमी नहीं थी । घर पूरी तरह से खुशहाल था । किन्तु लहणा का मन इन भौतिक सुख-सुविधाओं से विरक्त ही रहता था । वे सच्ची शान्ति की तलाश में भटका करते थे । कोई ऐसा गुरु उन्हें नहीं मिला था, जो उन्हें शान्ति का सच्चा मार्ग बता सकता । इन्हीं दिनों उनके पिता फेरूमल का निधन हो गया तो परिवार की सारी जिम्मेदारी उनके कन्धों पर आ पड़ी । वे कारोबार में व्यस्त हो गए । फिर भी उनका मन अशान्त रहता । माता के दर्शनों को उनका मन व्याकुल रहता । गुरुवाणी में लिखा है –'जैसी आशा वैसी मनसा' अर्थात् जैसी मन में आशा रहती है, मन की हालत वैसी ही हो जाती है । लहणा के मन में भी किसी गुरु के दर्शन करने की प्रबल इच्छा जाग्रत हो चुकी थी । इसी इच्छा के फलस्वरूप परमात्मा ने ऐसा बानक बनाया कि लहणा की भेंट गुरु नानक से करा दी ।

3. मन उट्ठे, सो सामने आएं–

एक दिन रोजमर्रा की तरह लहणा मुंह अंधेरे सोकर उठे तो अचानक उनके कानों में गुरु नानक देव की वाणी पड़ी । गुरु नानक की वाणी को कोई मधुर कंठ से गा रहा था । लहणा घर से बाहर निकले और उन स्वरों का पीछा करते हुए अपने पड़ोसी जोधा के घर जा पहुँचे । जोधा गुरु नानक का शिष्य था । वह प्रतिदिन भोर के समय गुरुवाणी का पाठ किया करता था । गुरुवाणी के शब्द लहणा के जहन में भीतर तक उतरते चले गए । वह आत्म-विभोर हो उठा । उसने जोधा से पूछा–''भाई जोधा ! तुम यह क्या गा रहे हो ?''

यह गुरुवाणी है ।

जोधा ने लहणा को बताया–

मेरे गुरु नानक देव अपनी इस वाणी में उपदेश देते हैं। मैं उन्हीं के शब्दों को गा रहा हूँ।

क्या मैं तुम्हारे गुरुदेव से भेंट कर सकता हूँ?

हाँ-हाँ, क्यों नहीं कर सकते? उनका दरबार तो सभी के लिए खुला है। इन दिनों वे करतारपुर में रहते हैं।

लहणा अपने घर लौट आया। उसके मन में गुरु नानक देव के दर्शन करने की ललक जागृत हो उठी। वह सोचने लगा कि जिनके उपदेशों में इतनी मिठास है वे अवश्य महान् संत होंगे। उनकी वाणी में कितनी शान्ति है, कितना प्रभाव है। उसका मन गुरु नानक के दर्शनों के लिए बेचैन हो उठा। कुछ दिन बाद ही नवरात्रि का समय आ गया। नवरात्रि में प्रतिवर्ष की भाँति इस बार भी लहणा अपनी संगत के साथ देवी दर्शन के लिए चल पड़ा। देवी के मार्ग में ही, मार्ग से तीन-चार कोस दूर के फासले पर करतारपुर था। लहणा के मन में तो गुरु नानक देव से मिलने की और उनका सत्संग पाने की लालसा पहले ही उठ चुकी थी। जब उनकी संगत करतार पुर की ओर जाने वाले मार्ग पर पहुँची तो लहणा ने अपने संगी-साथियों से कहा–

भाइयो! तुम लोग जाकर देवी माँ के दर्शन कर आओ। मैं गुरु नानक देव के दर्शन करने करतार पुर जाऊँगा। तुम लोग जब लौटकर आओ तो मुझे यहाँ से लेते चलना। लहणा की बात सुनकर संगत ने पहले तो कुछ नाराजगी दिखाई। लेकिन जब लहणा को अपने निश्चय पर दृढ़ देखा तो वे लोग देवी दर्शन को चले गए। इधर उत्साह से भरा लहणा करतारपुर की ओर चल दिया।

लहणा गुरु दर्शन की आस में गुरु नानक के खेतों पर जा पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि कुछ लोग गेहूं के खेत में से सरसों के पौधे निकाल रहे हैं। वहीं पर एक वृक्ष के तने से अरबी नस्ल का एक घोड़ा बंधा था। लहणा सोचने लगा कि यह कीमती घोड़ा कहीं गुरु नानक का न हो और ये मजदूर उसे घुमाने के लिए यहाँ लाए हों। कुछ पल सोचने के बाद उसने एक किसान से पूछा–

भाई! मैं गुरु नानक देव के दर्शनों की इच्छा लेकर खडूर से आया हूँ। क्या तुम मुझे उनके पास लेकर चल सकते हो?

पानी, मिट्टी से सने हुए हाथों को उस किसान ने अपने कुर्ते से पोंछा और बोला–

बस पुरखा ! तू जो गुरु नानक के दर्शनों के लिए आया है तो समझ ले तेरे को दर्शन हो गए ।

उस किसान की बात सुनकर लहणा आश्चर्य में भरकर उसका मुख देखने लगा । किसान उसकी दशा देख कर मुस्कराया और बोला–

हम यह सरसों निकाल लें, फिर उनके पास चलते हैं । अभी तुम यहाँ बैठ जाओ ।

किसान ने एक मोटी सी चादर खेत की मेंड़ के पास बिछा दी । लहणा को तब स्वप्न में भी यह गुमान नहीं था कि जिस किसान से वह बात कर रहा है, वे ही गुरु नानक हैं । उसने तो कल्पना कर रखी थी कि गुरु नानक बड़ी भारी संगत के सामने किसी कीमती सिंहासन पर विराजमान होंगे । लहणा चादर पर बैठ गया । गुरु नानक के साथ जो अन्य किसान सरसों निकाल रहे थे, वे चुपचाप देखते रहे । कुछ देर बाद काम समाप्त करके गुरु नानक ने सरसों के गट्ठर दूसरे किसानों के सिर पर रखवाकर गांव की ओर भेज दिए और स्वयं घोड़े को खोलकर लहणा के पास आए और बोले–

भाई पुरखा ! तुम इस घोड़े पर चढ़ जाओ । हम यहाँ से सीधे गुरु नानक देव के पास चलेंगे । लहणा पहले तो हिचकिचाया । परन्तु जब गुरु नानक ने बताया कि यह घोड़ा उनका नहीं साधु-संगत का है तब लहणा घोड़े पर चढ़ गए । गुरु नानक ने घोड़े की रास पकड़ी और चल दिए । लहणा सोचता रहा कि यह घोड़ा बाहर से आने वाले लोगों के स्वागत के लिए रखा गया होगा । यह सिक्ख भी संगत का सेवक मालूम देता है । कुछ देर बाद गुरु नानक लहणा को लेकर डेरे पर पहुँचे । लोग उन्हें आश्चर्य से देख रहे थे । रास्ते में लहणा गुरु नानक देव के बारे में बहुत-सी बातें पूछता आया कि वे कैसे हैं और क्या करते हैं । उनका शिष्यों के साथ कैसा वर्ताव है । गुरु नानक सहज रूप से उसके प्रश्नों का उत्तर देते रहे ।

4. लहणा हुआ निहाल–

डेरे पर पहुँचकर गुरु नानक ने लहणा को दूसरे सेवकों के साथ करते हुए कहा–

भाई ! इन्हें भोजन कराओ और आराम करने के लिए चारपाई डाल दो । शाम को गुरु संगत के समय इन्हें गुरु के दर्शनों के वास्ते ले आना ।

लेकिन लहणा ने कहा–

नहीं, पहले मैं गुरु जी के दर्शन करूँगा, बाद में भोजन करूँगा।

गुरु नानक देव के क्रिया-कलाप को वहाँ कितने ही लोग हैरानी से देख रहे थे। कोई कुछ कह नहीं रहा था। तब गुरु नानक देव ने लहणा को संगत के स्थान पर ले जाकर बैठा दिया और बोले–

तुम यहाँ बैठो, मैं गुरु देव को लेकर आता हूँ।

इतना कह कर गुरु नानक देव भीतर घर में चले गए और कपड़े बदलकर वापस आए और तख्त पर जा बैठे। सभी सिक्ख गुरु जी की जय-जयकार करने लगे। यह देखकर लहणा घबराकर उठ खड़ा हुआ और आँखों से अश्रु प्रवाहित करते हुए गुरु नानक देव के चरणों में गिर पड़ा और बोला–

हे गुरुदेव! मुझे क्षमा करें। मैंने आपको नहीं पहचाना। आपने भी मेरी इतनी कड़ी परीक्षा क्यों ली?

गुरु नानक देव मुस्कुराए और बोले–

भाई! मैंने तुम्हारी कोई परीक्षा नहीं ली। मैंने तो अपना सेवा धर्म निभाया है। तुम मेरे अतिथि हो। अतिथि की सेवा करना हमारा धर्म है।

लहणा ने गुरु नानक देव के चरण नहीं छोड़े और उन्हें अपने अश्रुओं से भिगोता रहा और बोला–

गुरु जी! जब तक आप इस लहणा को अपनी सेवा में नहीं लेंगे, तब तक मैं आपके चरणों को नहीं छोड़ूंगा।

गुरु नानक देव ने लहणा को आशीर्वाद देकर उसे निहाल कर दिया। उस दिन के बाद लहणा ने निश्चित् कर दिया कि अब से गुरु को छोड़कर कहीं नहीं जाएंगे। उनकी वाणी के अनुसार ही लहणा ने अपना जीवन यापन करने का संकल्प ले लिया।

चिन्तपूर्णी माता के दर्शन करके उनके साथी लौट कर करतारपुर में लहणा को लेने आए। किन्तु लहणा ने उनके साथ वापस जाने से इन्कार कर दिया और उन्हें वापस घर भेज दिया। लहणा तन-मन से गुरु नानक देव की सेवा में लग गया। वह गुरु के प्रति इस तरह भक्तिमय हो गया जैसे वह उन्हीं का एक अंग बन गया हो। गुरु का हुक्म उसके लिए आदर्श वाक्य बन गया।

लहणा की सेवा से गुरु नानक देव ने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि वे अपने बाद अपनी गद्दी लहणा को ही देंगे। लेकिन गुरु नानक देव की पत्नी को यह अच्छा नहीं लग रहा था। वे चाहती थीं कि उनके पति की 'गुरुगद्दी' उनके दोनों पुत्रों में से किसी एक को मिले। लेकिन गुरु नानक की दृष्टि में वे दोनों पुत्र 'गुरुगद्दी' के योग्य नहीं थे। फिर भी उन्होंने अपने शिष्यों की कई तरह की परीक्षा लेने की ठानी। एक बार गुरु नानक ने उनकी परीक्षा लेने के लिए एक गंदे नाले में एक बर्तन फेंक दिया और अपने दोनों पुत्रों से उसे निकाल कर लाने को कहा। लेकिन दोनों पुत्रों ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। जब उन्होंने लहणा को इशारा किया तो भाई लहणा कपड़ों सहित नाले में कूद पड़ा और कुछ ही पलों में बर्तन निकालकर ले आया और उसे मांजकर तथा धो-पोंछकर गुरु के सामने रख दिया।

इसी तरह एक बार सर्दी की एक भयानक रात में गुरु नानक ने अपने पुत्रों से नदी पर कपड़े धोकर लाने को कहा। लेकिन उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। भाई लहणा से जब गुरु देव ने कहा तो वह आधी रात में ही नदी पर जाकर वस्त्र धो लाया। तीसरी बार आधी रात को जब तेज बारिश पड़ रही थी, तब गुरु नानक ने अपने बेटों से एक दीवार बनाने के लिए कहा। लेकिन दोनों पुत्र मुंह बिचकाकर चले गए। जबकि लहणा ने तेज बारिश की परवाह न करते हुए रात भर में अकेले दीवार बना दी।

5. मुर्दा जब हलवा बना–

एक बार गुरु नानक अपने सभी शिष्यों को लेकर जंगल में गए और एक लट्ठ से सभी को पीटना शुरू कर दिया। शिष्यों ने समझा कि गुरुदेव पागल हो गए हैं। वे सिर पर पैर रखकर भाग खड़े हुए। जो शेष रहे थे, उनकी ओर गुरु नानक ने जेब से निकाल-निकाल कर सोने की अशर्फियां फेंकनी आरंभ की तो सभी उन अशर्फियों को लूट-लूटकर भागने लगे। लेकिन लहणा एक ओर खड़ा रहा। वह गुरु से पिटा भी, पर उसने उफ तक नहीं की और न लालच में पड़कर अशर्फियां उठाने के लिए दौड़ा। गुरु नानक देव उसे छोड़कर आगे बढ़ गए। वे जंगल में एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ एक व्यक्ति का शव पड़ा था। गुरु नानक ने अपनी चादर उस शव पर डाल दी और एकमात्र लहणा को अपने पीछे आया देख कहा–

ये मुर्दा खाओ।

दूर खड़े शिष्य तो घृणा से मुंह मोड़कर पीछे हट गए किन्तु लहणा आगे बढ़ा और पूछा–

गुरु जी ! इसे किस ओर से खाऊँ ।

सिर की ओर से खाओ ।

गुरु जी ने आदेश दिया ।

लहणा मुर्दा खाने के लिए आगे बढ़ा और जैसे ही उसने मुर्दे की चादर उठाई तो वह यह देखकर हैरान रह गया कि वहाँ मुर्दे के स्थान पर एक कड़ाही में गर्म हलवा भरा था । लहणा ने अपने गुरु की ओर देखा तो गुरुदेव ने मुस्कुराते हुए कहा –

भाई लहणा ! तुम परीक्षा में खरे उतरे । यह कड़ाह प्रसाद सबको बाँट दो और स्वयं भी इसे खाओ ।

भाई लहणा ने ऐसा ही किया । फिर 2-9-1539 ई० के दिन संगत बुलाकर गुरु नानक देव ने लहणा को गुरु गद्दी सौंप दी और लहणा का नया नामकरण करके उन्हें गुरु अंगद देव बना दिया ।

गुरु अंगद देव से गुरु नानक ने कहा कि अब वे वापस खडूर चले जाएं और वहाँ गुरुगद्दी की स्थापना की और पहला अटूट लंगर चलाने की रीति डाली । उस लंगर में हर जाति का व्यक्ति बिना किसी भेद-भाव के और बिना किसी संकोच के एक ही पंक्ति में सबके साथ बैठकर भोजन पा सकता था । इस प्रकार गुरु अंगद देव जी ने जात-पांत और छूआ-छूत के भेद को मिटाने का संकल्प दोहराया । इस लंगर में सभी लोग मिलकर भोजन पकाते थे और भोजन कराते थे तथा बर्तन भी स्वयं ही साफ करते थे । इस प्रकार वे सभी एक दूसरे के निकट आ जाते थे । यही नहीं, गुरु अंगद देव जी ने दूर-दूर से आने वाली संगतों को सद्धर्म का उपदेश देना आरम्भ किया उन्हें आत्मिक ज्ञान दिया और झूठे पाखंडों का खण्डन किया ।

6. साहित्यसृजन–

सबसे बड़ा कार्य गुरु अंगद देव ने यह किया कि पंजाबी बोली को शुद्ध रूप में गुरुमुखी लिपि में लिखना सिखाया । उन्होंने काफी खोजबीन करके शुरू से आखिर तक अपने गुरु नानक देव जी का जीवन चरित्र और उनकी वाणी को लिपिबद्ध कराया । इसका नाम आज भी 'भाई वाले की साखी' के रूप में प्रसिद्ध है । बाद में इस वाणी को 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में स्थान मिला ।

आपने 62 शब्दों की रचना की जो श्रीगुरुग्रंथ साहिब के महला-2 के नाम से सम्पादित की ।

इसके अतिरिक्त गुरु अंगद देव ने लोगों के स्वास्थ्य और शारीरिक बल पर विशेष ध्यान देने के लिए जगह-जगह अखाड़े बनवाए । अखाड़ों में लोगों को व्यायाम और कुश्ती लड़ना सिखाया जाता था । साथ ही कबड्डी दौड़ और रस्सा खींच जैसे खेलों को भी प्रोत्साहन दिया जाता था । उनका कहना था कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ दिमाग़ रहता है और स्वस्थ दिमाग़ का स्वामी सत्य की परख आसानी से कर सकता है ।

यही नहीं, गुरु अंगद देव ने लोगों में निडरता के भावों को भरने का महत् कार्य भी किया । उन्हें साहसी बनने की शिक्षा दी और सिक्ख धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए सिक्ख संगतों को दूर-दूर तक भेजा । लोगों को सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया । गुरु के प्रति अटूट आस्था, निर्बल के प्रति सहयोग और सभी प्राणियों से प्रेम करना सिखाया । सेवा धर्म को अपने उपदेशों में सर्वोच्च स्थान दिया ।

गुरु अंगद देव का यह काल मुगल बादशाह हुमायूं का था । बाबर के समय तक तो सब ठीक-ठाक चलता रहा था । लेकिन बाबर की मृत्यु के उपरान्त जब हुमायूं गद्दी पर बैठा, तब वह अपने राज्य का शासन-प्रबंध ठीक प्रकार से नहीं कर सका । शेरशाह सूरी ने उसे राज्य से भगा दिया और उसकी गद्दी पर अधिकार कर लिया । हुमायूं छिपकर इधर-उधर भागता रहा । इसी तरह अपने बचे-खुचे साथियों के साथ भागते-भागते एक बार वह खडूर पहुँचा । उसने अपने पिता के मुख से गुरु नानक देव जी की प्रशंसा सुन रखी थी । उसे पता चला कि इन दिनों खडूर में गुरु नानक देव के शिष्य गुरु अंगद देव जी की गुरुगद्दी है ।

हुमायूं जब वहाँ पहुँचा, तब गुरु अंगद देव जी समाधि में लीन थे । पहले तो उसने कुछ देर इंतजार किया । पर जब काफी देर तक भी गुरु अंगद देव जी की समाधि नहीं टूटी तो वह क्रोध में भर उठा । उसने क्रोध में अपनी तलवार खींच ली और चाहा कि गुरु अंगद देव की गर्दन उड़ा दे । तभी गुरु अंगद देव ने आँखें खोली और हुमायूं को फटकारते हुए कहा—

अरे मूर्ख ! यह तलवार शेरशाह सुरी पर उतारनी थी, यहाँ फकीर पर क्या उठाता है इसे ? यह तेरी कायरता है ।

गुरु अंगद देव की बात सुनकर हुमायूं बेहद शर्मसार हुआ । तलवार म्यान में डालकर वह गुरु अंगद देव के पैरों में गिर पड़ा मुझे माफ करें बाबा ! परेशानियों से घबरा कर पागल हो उठा था । मैं अपने किए पर बेहद शर्मिंदा हूँ । गुरु अंगद देव ने हुमायूं को उठाकर आसन पर बैठाया और उसे हिम्मत बंधाते हुए आशीर्वाद दिया—राजन् ! तू गुरु द्वार पर आया है । संयम और विवेक रख और हिम्मत से काम ले, जा तेरी मनोकामना अवश्य पूरी होगी । फिर से प्रयास कर । तुझे तेरा राज्य वापस मिल जाएगा ।

हुमायूं उठ खड़ा हुआ । उसने अपने सैनिकों को एकत्र किया और शेरशाह सूरी को हराकर फिर से अपना राज्य प्राप्त किया । ठीक भी है जो राजा संकट के समय अपना संयम नहीं खोता और अपने विवेक को बनाए रखता है तथा शीघ्र ही अपनी गलतियों को सुधार लेता है, उसे कभी पराजित नहीं होना पड़ता । गुरु अंगद देव की वाणी में सत्य का प्रभाव था । समाज में फैली कुरीतियों और पाखण्ड के वे सदैव विरोधी रहे । उनके विचारों से प्रभावित होकर ही लोग उनके साथ जुड़ने लगे थे । उन्होंने अपने गुरु नानक देव की भाँति ही लोगों को सिखाया कि गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी परमात्मा की अराधना की जा सकती है । प्रायः वे अपने अनुयायियों से कहा करते थे कि मनुष्य जो दूसरों को देता है, उसका प्रतिफल उसे अवश्य प्राप्त होता है । सच्ची शिक्षा वही है जो मनुष्य कर्म करके ग्रहण करता है । स्वर्ग-नरक की कल्पना व्यर्थ है । मनुष्य को उसके कर्मों का फल इसी लोक में प्राप्त होता है ।

5. तब बरखा जब अंगद आए—

गुरु अंगद देव की ख्याति देखकर खडूर में रहने वाला मलूके नाम का एक साधु उनसे जलने लगा था । क्योंकि गुरु अंगद देव के कारण लोगों ने उसके पास आना-जाना कम कर दिया था और उसे अपनी स्वार्थपूर्ति में बाधा अनुभव होने लगी थी ।

एक बार गांव में वर्षा बिल्कुल नहीं हुई तो उसे गुरु अंगद देव को नीचा दिखाने का अवसर मिल गया । कुछ लोगों ने वर्षा न होने का कारण साधु से पूछा तो साधु मलूके ने उनसे कहा कि जब तक अंगद देव यहाँ रहेगा । वर्षा

नहीं होगी। क्योंकि वह विधर्मी है और लोगों को बहकाता है। उसने गांव के सभी लोगों को विधर्मी बना दिया है। गृहस्थ व्यक्ति के लिए पूजा-अर्चना करना क्या धर्म है? अंगद देव के यहाँ से जाने के बाद वर्षा अवश्य होगी।

यह बात किसी तरह चर्चा में आकर गुरु अंगद देव तक जा पहुँची उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि यदि मेरे यहाँ से चले जाने से वर्षा हो जाए और लोगों का भला हो जाए तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा। लोगों ने गुरु अंगद देव जी से ऐसा न करने के लिए कहा। किन्तु एक रात वे चुपके से खडूर छोड़कर तुड़ नामक गांव में चले गये। कुछ दिन बाद छपरी गांव के लोग आकर उन्हें अपने यहाँ ले गए। लेकिन वहाँ भी वह अधिक दिन नहीं रुके। वहाँ से वे भरोवाल चले गए। गुरु अंगद देव के खडूर से चले जाने के बाद भी खडूर में वर्षा नहीं हुई। कई महीने बीत गए। फिर उस साधु के पास पहुँचे और वर्षा न होने का कारण पूछा–

साधु महाराज! अब तो गुरु अंगद देव भी यहाँ से चले गए हैं फिर भी वर्षा नहीं हुई।

इस पर साधु हँसने लगा और बोला–

उस पाखंडी का प्रभाव अभी भी यहाँ बना हुआ है। इसीलिए वर्षा नहीं हो रही है।

इस पर लोगों को लगा कि साधु झूठ बोल रहा है। उन्होंने मार-पीटकर उसे ही गांव से बाहर निकाल दिया और भरोवाला जाकर गुरु अंगद देव जी के चरणों में गिरकर क्षमा मांगने लगे। वे उन्हें मनाकर वापस खडूर ले आए। जिस दिन वे वापस आए, उसी दिन गांव में मूसलाधार बारिश हुई। लोग गुरु अंगद देव जी की जय-जयकार करने लगे।

6. सतीयां सोई नानका–

गुरु अंगद देव सती-प्रथा के विरुद्ध थे। एक बार खडूर में एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई। वहाँ के पोंगा पंडितों ने उस व्यक्ति की पत्नी को अपने पति के साथ सती हो जाने के लिए मजबूर कर दिया। उन्होंने उस औरत से कहा कि यदि तू अपने पति के साथ सती हो जाएगी तो अगले जन्म में तुझे अपना पति फिर मिल जाएगा। वह औरत उनके बहकावे में आकर सती होने के लिए तैयार हो गई। गुरु अंगद देव को जब पता चला तो उन्होंने उस औरत के पास

जाकर उसे सांत्वना देते हुए कहा–

बहन इस प्रकार सती होना आत्महत्या करने जैसा है और आत्महत्या करने वाले की आत्मा सीधे नरक में वास करती है ।

उन्होंने आगे कहा–

सतीयां इह न आखीयन जो मड़िया लग मरन्न ।

सतीयां सोई नानका जो सील संतोख रहन्न ।।

सती वह नहीं है जो अपने मृतक पति के साथ चिता पर बैठकर जल जाती है । सती वह है जो पति के मरने के बाद शील और संतोष के साथ अपनी जीवन चलाती है । गुरु अंगद देव ने उसे समझाया कि अच्छा तो यह है कि वह अपना शेष जीवन चलाने के लिए किसी योग्य व्यक्ति से पुनर्विवाह कर ले । उस स्त्री के मन में गुरु अंगद देव जी की बात बैठ गई । उसने सती होने का अपना इरादा त्याग दिया और प्रतिदिन नियम से सिक्ख संगत में जाने लगी । उसने अपना सारा जीवन शील और संतोष से बिताने का संकल्प लिया और गुरु संगत में सेवा-कार्य संभाल लिया ।

इस प्रकार गुरु अंगद देव ने अपने समय के कितने ही पाखण्डों पर जमकर प्रहार किया और लोक कल्याण के लिए गुरु नानक द्वारा बताए सत् मार्ग पर चलने की प्रेरणा लोगों में भर दी । वे जीवन भर गुरु नानक देव जी की वाणी का ही प्रचार करते रहे । जब उन्हें लगा कि अब उनका अन्त समय निकट है तब उन्होंने गुरु नानक की ही भाँति अपने पुत्रों को गुरु गद्दी न देकर अपनी संगत के सबसे योग्य शिष्य भाई अमरदास को अपने पास बुलाया ओर उन्हें अपनी गद्दी, पांच पैसे, एक नारियल और तिलक-चन्दन के साथ सौंप दी । गुरु गद्दी पर भाई अमरदास को सुशोभित करके गुरु अंगद देव 29-3-1552 ई० को खडूर साहिब अमृतसर में ज्योतिजोत समा गये । एक दिव्य ज्योति निरंकार की महाज्योति में सदा के लिए विलीन हो गई । उनके शिष्यों ने अपने महान् गुरु का भव्य रूप से अंतिम संस्कार किया ।

7. गुरु अंगद देव जी की वाणी–

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि ।।

हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि ।।

हउमै किथहु उपजै कितु संजमि इह जाइ ।।

हउमै एहो हुकमु है पइऐ किरति फिराहि।।

हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि।।

किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि।।

नानक कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि।।

—महला 2 पृ० 466

गुरु अंगददेव अभिमान की आलोचना करते हुए फरमाते हैं यह अहंभाव ही मानव के व्यक्तित्व का आधार है। इसके वश में होकर ही हम सब कर्म करते हैं। इस अहंभाव वश माया के बंधन में पड़कर जीव बारम्बार योनियों में जन्म लेता है। अब प्रश्न उठता है कि यह कहाँ से उत्पन्न होता है और किस विधि से इसका उच्छेद हो? यही आदेश है पूर्व जन्म के संस्कारों के अनुसार ही जीव पुनः पुनः कर्म करता फिरता है। अहंभाव दीर्घ रोग है। इसकी औषधि यही है कि यदि प्रभुकृपा करे तब जीव गुरु के उपदेशानुसार साधना करता है वह तब कहता है कि हे लोगो सुनो! इस प्रकार संयम द्वारा अहंभाव के दुःख की निवृत्ति होती है। क्योंकि अभिमान प्रभु-मिलन में एक महान् बाधा है। जैसे कबीर ने भी कहा है—

जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नाहिं।

प्रेम गली अति सांकरी तामे दो न समाहि।।

गुरु अमर दास जी

5-5-1479 ई० - 1-9-1574 ई० (95 वर्ष 3 महीने 26 दिन)

3. गुरु अमरदास

महानता के पायदान पर आयु कभी आड़े नहीं आती। गुरु अमरदास 62 वर्ष की आयु में गुरु अंगद देव जी के सम्पर्क में आए थे। और गुरुगद्दी उन्हें 73 वर्ष की आयु में प्राप्त हुई थी। इस आयु में जब व्यक्ति जीवन से हार मानकर बैठ जाता है, तब गुरु अमरदास ने सिक्ख परम्परा की महान् गुरु गद्दी का पदभार ग्रहण करके अपनी कर्मठता का परिचय दिया था। उनकी यह कर्मठता ही उनकी महानता की परिचायक सिद्ध हुई थी। गुरु घर में सेवा का स्थान सबसे ऊँचा माना गया है। गुरु अंगद देव ने जिस प्रकार अपने गुरु नानक देव की सेवा करके गुरु पद प्राप्त किया था, उसी प्रकार गुरु अमरदास ने भी सेवा कर्म करते हुए गुरु पद प्राप्त किया था।

1. जन्म और बाल्यकाल

गुरु अमरदास का जन्म 5-5-1479 ई० में, जिला अमृतसर के एक गांव बासरके में हुआ था। अमरदास की माता का नाम लक्ष्मी देवी था। उनके पिता भाई तेजभान और माता लक्ष्मी देवी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। इस धार्मिकता का प्रभाव अमरदास को बचपन से ही विरासत में प्राप्त हुआ था। भाई तेजभान अपने गांव में किरयाने की दुकान करते थे। किशोरावस्था आते-आते अमरदास भी अपने पिता के व्यवसाय में हाथ बंटाने लगे थे। साथ ही अपने माता-पिता के साथ वे तीर्थाटन पर भी जाने लगे थे। उनका परिवार हर वर्ष गंगा स्नान के लिए हरिद्वार जाया करता था। यह उनका प्रतिवर्ष का नियम था। कहा तो यह जाता है कि अमरदास स्वयं 21 बार नंगे पैर हरिद्वार की यात्रा पर गए थे। यह यात्रा महीने में बड़ी कठिनाई से पूरी होती थी। फिर भी उनका मन नहीं भरता था। हर वर्ष वे उसी उत्साह से गंगा स्नान के लिए जाते रहे।

अपनी किशोरावस्था में, जब एक बार अमरदास गंगा स्नान कर रहे थे, तब उस जमाने के प्रख्यात ज्योतिषी पंडित दुर्गादत्त की दृष्टि उन पर पड़ी। वे भी उसी समय गंगा में स्नान कर रहे थे। अमरदास को देखकर पंडित दुर्गादत्त आश्चर्य से उन्हें देखते रह गए। वे अपनी जिज्ञासा को रोक नहीं पाये।

उन्होंने अमरदास से उनका परिचय पूछा तो अमरदास ने हैरान होकर उस अपरिचित व्यक्ति से उल्टे पूछा–

आप मेरा परिचय क्यों जानना चाहते हैं?

बेटा मेरा नाम दुर्गादत्त है। मेरी नजर तुम्हारे हाथ की रेखाओं पर पड़ी तो मेरा ज्ञान उत्सुक हो उठा और इसीलिए मैंने तुम्हारा परिचय पूछ लिया।

आपने मेरे हाथों की लकीरों में क्या देखा?

बेटा तुम्हारे हाथ की लकीरों में राजा बनने का योग है। यदि तुम राजा नहीं बने तो एक दिन कोई बहुत बड़े सन्त बनोगे। दीनों और दुःखी जन की पीड़ा से तुम्हारा हृदय सदैव द्रवित रहेगा और तुम उनकी सेवा करते हुए उच्च पद तथा ख्याति प्राप्त करोगे।

पंडित दुर्गादास की बात सुनकर अमरदास ने अपना परिचय दिया और उन्हें अपने माता-पिता से मिलवाया। पंडित दुर्गादत्त की बात सुनकर अमरदास के माता-पिता बहुत खुश हुए। उन्होंने पंडित जी को भोजन कराना चाहा। किन्तु उन्होंने यह कह कर भोजन करने से मना कर दिया कि जिसका कोई गुरु नहीं, वे उसके हाथ का भोजन नहीं करते और न कोई दक्षिणा आदि ही लेते हैं। इनकी धर्मपत्नी का नाम रामकुंवर था जिससे चार सन्तानें दो पुत्र व दो कन्यायें हुई।

2. सद्गुरु की खोज–

पंडित जी की बात किशोर अमरदास जी के हृदय में पड़ गई। वे उसी दिन से किसी योग्य गुरु की तलाश में जुट गए। किन्तु गुरु क्या उन्हें इतनी आसानी से मिलने वाला था? फिर भी वे निराश नहीं हुए। वे पिता के कारोबार में हाथ बंटाते रहे और परमात्मा की आराधना में भी नियम से लगे रहे। सन् 1502 के माघ मास की 17वीं तिथि को मनसा देवी के साथ उनका विवाह कर दिया गया। मनसा देवी ने समय आने पर दो पुत्रियों दानी और भानी तथा दो पुत्रों मोहन और मोहरी को जन्म दिया। समय धीरे-धीरे बीत रहा था। घर में किसी चीज की कमी नहीं थी। घर में अक्सर साधु-संत आते रहते थे। उनसे धर्म चर्चा भी होती रहती थी। परन्तु अमरदास के मन में शान्ति नहीं थी। कोई ऐसा व्यक्ति अभी तक उन्हें नहीं मिला था, जिसे वे गुरु

का दर्जा दे सकते या जिनके चरणों में सिर रखकर वे अपने मन को शान्त कर सकते। अमरदास के माता-पिता समय आने पर दिवंगत हो गए तो कारोबार की सारी जिम्मेदारी उनके कंधों पर आ पड़ी। वे नित्य भ्रमण के लिए जाया करते थे और वहाँ से लौटकर दुकान जाते थे।

एक बार जब वे प्रातः भ्रमण के लिए जा रहे थे तो उनके कानों में किसी की समुधर आवाज पड़ी। कोई स्त्री अपने मधुर कंठ से कोई सद्वाणी गा रही थी। आवाज़ की दिशा में आगे बढ़कर अमरदास जी ने देखा कि जिस मकान से वह आवाज़ आ रही थी, वह उनके भतीजे का था। वे एक पल भी गंवाए बिना घर में प्रवेश कर गए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि उनके भतीजे की पत्नी अमरो वह वाणी सस्वर गा रही थी। अमरदास चुपचाप खड़े-खड़े उस वाणी को सुनते रहे। उस वाणी को सुनकर उनके मन को बड़ी शान्ति मिली। वाणी के पूरा होने पर अमरदास ने अमरो से पूछा—"बेटी! तू ये किसकी वाणी गा रही थी?"

अमरो ने उठकर अमरदास जी के चरण स्पर्श किए और बोली—"चाचा जी! ये वाणी गुरु नानक देव जी की है। उनकी गुरु गद्दी पर इन दिनों मेरे पिता श्री अंगद देव जी विराजमान हैं। ये वाणी उन्होंने ही मुझे दी थी।"

भतीजे की नवविवाहिता पत्नी की बात सुनकर अमरदास जी के मन में गुरु अंगद देव के दर्शनों की इच्छा जाग्रत हो उठी। उन्होंने अमरों से कहा "बेटी! क्या तू मुझे उनके दर्शनों के लिए ले जा सकती है?"

"क्यों नहीं चाचा जी!" अमरो बोली—"इस बार जब मैं अपने घर खडूर जाऊँगी, तब आप भी मेरे साथ चलना। वैसे भी मेरे पिताश्री तो आपके समधी हैं। वे आपसे मिलकर बहुत खुश होंगे।"

3. समधी शिष्य बने—

कुछ दिन बाद ही ऐसा शुभ अवसर आया कि बीबी अमरो का अपने पिता के घर जाना हुआ तो वह अपने साथ अमरदास जी को भी लेती गई।

जिस समय अमरदास जी खडूर पहुँचे, उस समय गुरु अंगद देव जी अपनी संगत के सामने प्रवचन कर रहे थे। अमरदास जी प्रवचन सुनने वहीं बैठ गए और तन्मयता के साथ प्रवचन सुनते रहे। उन प्रवचनों का भाई

अमरदास जी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे अपने को रोक नहीं पाए। गद्‌गद् होकर वे उठे और एक क्षण भी गंवाए बिना आगे बढ़कर गुरु अंगद देव जी के चरणों में गिर पड़े।

"मुझे अपना शिष्य बना लीजिए गुरु जी।" भाई अमरदास द्रवित होकर बोले—"बरसों से जिस गुरु की तलाश में मेरा मन भटक रहा था, आज वे मुझे मिल गए। जब तक आप हाँ नहीं कहेंगे, तब तक मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा।"

उनकी विह्वलता को देखकर गुरु अंगद देव ने उनसे कहा—"भाई अमरदास जी! आप तो मेरे समधी हैं। मैं आपको अपना शिष्य कैसे बना सकता हूँ?"

"गुरु और शिष्य के रिश्ते में, गुरु और शिष्य के अलावा कोई अन्य रिश्ता नहीं आता। मैंने आपका शिष्य बनने का संकल्प ले लिया है। मैं इसके अलावा किसी और रिश्ते को नहीं मानता।"

भाई अमरदास की प्रार्थना ने गुरु अंगद देव जी को द्रवित कर दिया। उन्होंने अमरदास को उठाकर अपने सीने से लगा लिया और उन्हें अपना शिष्य स्वीकार करके, उन्हें लंगर की देखभाल का काम सौंप दिया। अमरदास जी की आयु उस समय तक 62 वर्ष की हो रही थी। किन्तु उनका उत्साह देखकर गुरु अंगद देव को भी झुकना पड़ा। दूसरी ओर, भाई अमरदास ने सारी लोक-लाज त्याग दी और लंगर का काम पूरी मुस्तैदी से देखने लगे। घर-बार उन्होंने अपने बच्चों पर छोड़ दिया।

भाई अमरदास गुरु के आश्रम में रहते हुए केवल लंगर की ही देखभाल नहीं करते थे, दीन-दुःखियों की सेवा में भी अपना समय बिताते थे। गुरु अंगद देव के प्रवचन सुनने के लिए दूर-दूर से सिक्ख संगत आया करती थी। भाई अमरदास प्रतिदिन उनकी हर प्रकार की सुख-सुविधा का ख्याल रखा करते थे। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन सुबह के समय अपने गुरु अंगद देव को स्नान कराने की जिम्मेदारी भी भाई अमरदास ने अपने कंधों पर ले रखी थी। उन दिनों कुएं आदि तो होते थे, परन्तु भाई अमरदास रोज मुंह अंधेरे गागर

लेकर व्यास नदी पर जाते और स्वच्छ जल से उसे भरकर लाते थे। उसी जल से वे अपने गुरु का रोज जलाभिषेक किया करते थे। उन्हें अपने हाथों से मल मलकर नहलाते थे।

4. निआसरियां दा आसरा–

एक दिन रात से ही जोरदार वर्षा हो रही थी। भाई अमरदास अपने नियम के अनुसार व्यास नदी पर भीगते हुए पहुँचे और गागर में जल भरकर वापस लौट पड़े। रास्ते में बहुत ज्यादा कीचड़ हो रही थी और फिसलन भी थी। लेकिन भाई अमरदास का ध्यान उस कीचड़ और फिसलन की ओर नहीं था। वे तो अपनी ही धुन में चले आ रहे थे। जिस समय वे गांव में एक जुलाहे के घर के पास पहुँचे, उनका पैर फिसल गया और वे धड़ाम से कीचड़ में गिरे। लेकिन उन्होंने गागर का एक बूंद पानी भी नहीं छलकने दिया। गागर को उन्होंने अपने हाथों में संभाले रखा। वे धीरे से उठने लगे। तभी उनके कानों में जुलाहे के घर से आवाज़ आती सुनाई दी। जुलाहा अपनी पत्नी से पूछ रहा था–''जरा देखो तो बाहर कौन गिरा है?''

इतने मुंह अंधेरे और कौन होगा? वही अमरू निथावा होगा। वह अपने समधी के टुकड़ों पर अपना जीवन काट रहा है।'' जुलाहे की पत्नी भिन्नाती हुई सी बोली। भाई अमरदास ने जुलाहे की पत्नी की बात अनसुनी कर दी और वे उठकर गुरु के घर की ओर चल दिए। गुरु अंगद देव ने उनके लाए हुए जल से स्नान किया और वस्त्र धारण करते हुए भाई अमरदास से पूछने लगे।

''भाई अमरदास! जब तुम जल भरकर व्यास नदी से लौट रहे थे, तब तुम्हारे साथ कोई हादसा हुआ था?''

''नहीं गुरु जी! कोई खास बात तो नहीं हुई।'' भाई अमरदास ने सहज भाव से उत्तर दिया–''रास्ते में कीचड़ बहुत थी। मैं जुलाहे के घर के बाहर फिसलकर गिर पड़ा था। मगर गागर का पानी मैंने जरा भी नहीं छलकने दिया।''

''इसके अलावा और कोई बात?''

''नहीं गुरु जी! और तो कोई बात नहीं हुई। केवल जुलाहे की पत्नी अपने पति से कह रही थी कि बाहर गिरने वाला अमरू होगा। जिसका इस

संसार में कोई अपना नहीं । वह बेसहारा है ।'' भाई अमरदास ने गुरु अंगद देव की ओर देखा ''अब आप ही बताइए गुरु जी । मैं बेसहारा कैसे हूँ? आपका सहारा मुझे है । आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ । फिर मैं बेसहारा क्योंकर हुआ?''

भाई अमरदास की तर्कपूर्ण और सहज उक्ति सुनकर गुरु अंगद देव मुस्कुराए और बोले–''नहीं भाई अमरदास! तुम बेसहारा नहीं हो । तुम तो बेसहारा लोगों के भी सहारा हो ।''

तू निथानियां दा थान
निमानियां दा मान
निगतियां दी गति
निपतियां का पति
निधियों दी पीर
निआसरियां दा आसरा
तू सब दा स्वामी ।

तू तो उनका भी स्थान है जिनका कोई स्थान नहीं हैं तू उन सभी गिरे हुए दीन-हीन लोगों का मान है । जिनके जीवन में कहीं भी गति नहीं है और जो असहाय होकर जड़ बनकर रह गए हैं, तू उनकी गति है । तू उनकी इज़्ज़त है, जिन्हें लोगों ने बेइज़्ज़त किया है । तू उन सभी निधियों अर्थात् उन सभी ऋद्धि-सिद्धियों तथा धन वैभव का पीर है, रक्षक है, ज्ञाता है । तू उन सभी लोगों का सहारा है, जो असहाय और बेआसरा है । फिर तू बेसहारा कैसे हो सकता है?

गुरु अंगद देव के स्नेह भरे वचनों को सुनकर भाई अमरदास जी का हृदय गद्‌गद हो उठा । वे अपने गुरु के चरणों में गिर पड़े । गुरु अंगद देव ने उसी क्षण यह निश्चय कर लिया था कि अपने बाद अपनी गुरु गद्दी वे भाई अमरदास को ही देंगे ।

सिक्ख संगत से गुरु अंगद देव ने सभी को इस बात का संकेत भी दे दिया । लेकिन गुरु अंगद देव के दोनों पुत्रों को अपने पिता की यह बात जरा भी न भायी । वे गुरु गद्दी पर अपना अधिकार समझते थे । उनका कहना था कि उनके होते हुए कोई भी गुरु गद्दी का अधिकारी नहीं हो सकता ।

5. चमत्कारी छड़ी–

उन्हीं दिनों की बात है कि गोंदा नाम का एक चरवाहा एक दिन गुरु अंगद देव जी के पास आया और बोला–

''गुरुदेव ! मैं व्यास नदी के किनारे अपने नाम से एक नगर बसाना चाहता हूँ । लेकिन लोग उस नगर में जाकर बसने के लिए तैयार नहीं हैं ।''

''क्या कहते हैं वे ?'' गुरु अंगद देव को जिज्ञासा होने लगी ।

''कहते हैं गुरु जी ! ''चरवाहा बोला–''वहाँ पर भूत-प्रेत रहते हैं । अब वहाँ पर मरने कौन जाएगा ?''

''अच्छा ! ऐसा कहते हैं ?''

''हाँ गुरु जी ! ऐसा ही कहते हैं । वे बहुत ज्यादा भयभीत हैं और मेरी बात सुनना ही नहीं चाहते ।''

''फिर तुम मुझसे क्या चाहते हो ?''

''गुरु जी ! मैं चाहता हूँ कि आप अपने किसी खास सेवादार को वहाँ भेज दें जो वहाँ जाकर रहने लगे तो और लोग भी भय छोड़कर वहीं आ बसेंगे । मैं आपके सेवादार के लिए रहने की और खाने-पीने की व्यवस्था भी कर दूंगा ।''

''ठीक है । मैं अपने दोनों पुत्रों को वहाँ भेज देता हूँ ।'' गुरु अंगद देव जी ने चरवाहे से कहा और अपने दोनों पुत्रों दासू और दातू को बुलाकर गोंदा चरवाहे के साथ जाने को कहा ।

लेकिन दासू और दातू ने वहाँ जाने से साफ इन्कार कर दिया और बोले– ''वहाँ भूत-प्रेतों के बीच में मरने कौन जाएगा ? इससे तो अच्छा है आप अपने सेवादारों में से किसी को भेज दें । हम वहाँ नहीं जाएंगे ।''

अपने पुत्रों की कायरता देखकर गुरु अंगद देव को भारी दुःख हुआ । उन्होंने आदमी भेजकर भाई अमरदास जी को बुलवाया और उन्हें चरवाहे के साथ उसके नए बसाए जा रहे नगर में रहने की आज्ञा दी ।

''जो आज्ञा गुरु जी !'' भाई अमरदास तत्काल वहाँ जाने के लिए तैयार हो गये ।

जब वे जाने लगे, तब गुरु अंगद देव ने उन्हें एक छड़ी दी और कहा–''सुना है वहाँ भूत-प्रेतों ने उत्पात मचा रखा है । यह छड़ी उन भूत-प्रेतों को भगाने में तुम्हारी सहायता करेगी ।

''ठीक है गुरु जी ।'' भाई अमरदास अपने गुरु जी से छड़ी लेकर उस चरवाहे के साथ तत्काल चल दिए ।

गोंदा नामक चरवाहे ने व्यास नदी के किनारे गोयंदवाल नाम का नगर बसाना आरम्भ कर दिया । भाई अमरदास ने अपने परिवार को भी वहाँ बुला लिया और सभी जरूरतमंद लोगों की सेवा करते हुए वे अपना समय बिताने लगे । देखते-देखते गोयंदवाल एक बड़ा नगर बन गया । भाई अमरदास के भय से वहाँ किसी भूत-प्रेत ने उत्पात नहीं मचाया ।

वस्तुतः वहाँ के कुछ स्थानीय स्वार्थी लोग नहीं चाहते थे कि गोंदा चरवाहे की इच्छा पूरी हो । इसलिए वे भूत-प्रेत का वहम दिखाकर लोगों को डराया करते थे । भाई अमरदास ने उन लोगों का पता लगाया और पहले तो उन्हें प्यार से समझाया, लेकिन जब वे प्यार से नहीं माने तो अपने सेवादारों के साथ मिलकर उन्होंने उनका पर्दा फाश कर दिया और उन्हें गुरु अंगद देव की छड़ी से ठीक कर देने को आदेश भी दे दिया । उसके बाद उन्होंने ऐसी कोई हरकत नहीं की । लोगों के मन से भूत-प्रेतों का डर निकल गया और ठठ के ठठ लोग वहाँ आकर बसने आरम्भ हो गए । इस प्रकार गोयंदवाल एक प्रसिद्ध और बड़ा नगर बन गया ।

भाई अमरदास के इस महत्वपूर्ण अभियान से खुश होकर गुरु अंगद देव ने भाई अमरदास जी को अपनी गुरु गद्दी सौंपने का पक्का निश्चय कर लिया । गुरु अंगद देव को पता था कि उनके दोनों बेटे भाई अमरदास जी से ईर्ष्या करते हैं । इसलिए उन्होंने 29-3-1552 ई० में सिक्ख संगत के सम्मुख भाई अमरदास को नारियल और तिलक देकर अपनी गुरु गद्दी सौंप दी और ऐलान कर दिया कि आज के बाद भाई अमरदास गोयंदवाल में ही रहकर सिक्ख मत का प्रचार-प्रसार करेंगे ।

अपने पिता के ऐसा करने पर गुरु अंगद देव के दोनों पुत्र नाराज हो गए । वे गुरु गद्दी पर अपना पुश्तैनी अधिकार समझते थे । पहले तो उन्होंने घर में ही बड़ा भारी बावेला मचाया । लेकिन जब गुरु अंगद देव ने अपना निर्णय नहीं बदला तब दोनों क्रोध में भरकर गोयंदवाल जा पहुँचे ।

जिस समय गोयंदवाल पहुँचे, उस समय गुरु अमरदास एक बड़ी भारी सिक्ख संगत के सामने गुरु आसन पर विराजमान होकर प्रवचन कर रहे थे ।

दोनों भाइयों ने वहाँ पहुंचकर गुरु अमरदास को भला-बुरा कहना आरम्भ कर दिया और एक ने तो क्रोध में भरकर गुरु अमरदास के सीने पर लात मार दी। सीने पर लात मारने वाले भाई का नाम दातू था। उसकी इस हरकत से सारी सिक्ख संगत क्रोध में भरकर उठ खड़ी हुई और दातू को पकड़ने के लिए आगे बढ़ने लगी।

लेकिन तभी गुरु अमरदास ने बिना क्रोध किए दातू का पैर अपने दोनों हाथों से पकड़ कर दबाना शुरू कर दिया और दुःखी होकर बोले–"दातू भाई! मेरी बूढ़ी हड्डियों के प्रहार से तुम्हारे कोमल पैर को चोट पहुँची होगी। लाओ मैं इसे दबाकर ठीक कर दूँ।" गुरु अमरदास जी की वाणी सुनकर दातू और दासू शर्मसार हो उठे। सारी सिक्ख संगत भी जहाँ की तहाँ ठहर गई और हाथ उठाकर गुरु अमरदास जी महाराज की जय-जयकार करने लगी। तत्काल दोनों भाई शर्म से मुंह छिपाकर वहाँ से चले गये।

6. शपथ गुरु अमरदास की–

गुरु अमरदास फिर से लोगों को बैठने के लिए कहकर शान्त भाव से उपदेश देने लगे। उन्होंने इस घटना को तत्काल भुला दिया। अपने अपमान का उन्हें जरा भी दुःख नहीं हुआ। उन्होंने संगत से कहा कि ये दोनों भाई मार्ग से भटके हुए हैं। एक दिन स्वयं ही पश्चाताप करके ठीक रास्ते पर आ जाएंगे। संगत की समाप्ति के बाद गुरु अमरदास घर लौटे। अपने गुरु के पुत्रों को इस प्रकार ईर्ष्या से जलते देखकर उन्हें मन ही मन भारी दुःख हो रहा था। जिस गद्दी के लिए वे ऐसा कर रहे थे, उसके प्रति उनका मोह भंग होने लगा। तभी उन्होंने एक भयानक निर्णय किया।

गोयंदवाल छोड़कर एक दिन वे चुपचाप अपने गांव बासरके में आ गए। वहाँ उन्होंने अपने आपको एक कमरे में बंद कर लिया और कमरे के दरवाजे पर लिखकर टांग दिया कि 'कोई भीतर न आए। यदि कोई दरवाजा खोलकर भीतर आए तो उसे गुरु अमरदास की शपथ।' कमरे के भीतर गुरु अमरदास ने समाधि लगा ली और मन ही मन उस परमपिता परमात्मा की ओर अपना ध्यान लगा लिया।

उधर गुरु अमरदास के गोयंदवाल छोड़ने का समाचार पाकर गुरु अंगद देव के बड़े पुत्र दातू ने तत्काल गोयंदवाल पहुँच कर गुरु गद्दी पर अधिकार

कर लिया और सब तरफ ऐलान करा दिया कि गुरु गद्दी से अमरदास का अब कोई सरोकार नहीं है। वही गुरु गद्दी का एकमात्र अधिकारी है। अब सभी सिक्ख उसे ही सिक्ख धर्म का वास्तविक गुरु मानें।

दातू ने रोजमर्रा की तरह गुरु गद्दी पर बैठकर प्रवचन करना चाहा। किन्तु उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक भी सिक्ख उसका प्रवचन सुनने वहाँ नहीं आया। कई दिनों तक इसी तरह का सिलसिला चलता रहा। वह रोज गद्दी पर आकर बैठता और किसी के न आने से परेशान होकर वापस उठ जाता। आखिर में निराश होकर दातू ने गोयंदवाल छोड़ दिया और बुझे मन से वापस खडूर लौटकर अपनी दुकान पर बैठना शुरू कर दिया।

गुरु अमरदास जी के गोयंदवाल छोड़कर चले जाने से सिक्ख संगत को भारी दुःख हुआ था। दातू को अपना गुरु न मान कर उन्होंने उसे वहाँ से वापस लौट जाने के लिए विवश कर दिया था। अब उन्होंने निश्चय किया कि वे बासरके जाकर गुरु अमरदास जी को मनाकर वापस लाएंगे। ऐसा सोचकर कुछ लोग वासरके पहुँचे। किन्तु वहाँ कमरे के बाहर जब उन्होंने गुरु की शपथ के साथ आदेश टंगा देखा तो किसी का भी साहस भीतर जाने का नहीं हुआ।

वे सोचने लगे कि बिना दरवाजा खोले गुरु जी के पास कैसे जाया जाए। उन सिक्खों में बाबा बुड्ढा नाम के एक सिक्ख भी थे। उन्होंने सोचकर उपाय बताया कि दीवार में सेंध करके भीतर जाया जा सकता है।

तत्काल कमरे में सेंध लगाई गई। बाबा बुड्ढा की तरकीब काम कर गई थी। वे सभी कमरे में गुरु जी के पास पहुँचे और उनके चरण पकड़कर उनसे पुनः वापस गोयंदवाल चलने की प्रार्थना करने लगे। उन्होंने वहाँ के पूरे हालात गुरु जी को बताए और कहा कि अगर वे नहीं चले तो वे भी यहीं रहकर भूखे-प्यासे मर जाएंगे। गुरु अमरदास का मन पिघल गया। उन्हें क्रोध तो कभी आता नहीं था। वे उनके साथ वापस गोयंदवाल चले आए। सभी ने उनकी जय-जयकार की और फिर से सत्संग की संगत जुड़ने लगी। इस बार सिक्ख संगत में पहले से भी ज्यादा उत्साह था।

7. लंगर के चार नियम

गुरु अमरदास ने अपने गुरु अंगद देव जी की भाँति गोयंदवाल में लंगर का चलन जारी रखा था। गुरु जी ने लंगर के लिए निम्नलिखित चार नियम निश्चित किए थे।

(1) लंगर में उच्च स्तर की सफाई रखना। वस्त्रों, बर्तनों, सब्जियों, दाल, अनाज तथा अन्य खाद्य पदार्थों को पूरी सफाई के साथ, उस स्थान को भी पूरी तरह स्वच्छता बनाए रखने का प्रबंध किया जहाँ बैठकर सभी भोजन करते थे।

(2) चौबीस घंटे लंगर जारी रखने की व्यवस्था की गई। कोई भी किसी भी समय आए, उसे उसी समय ताजा भोजन कराया जाए।

(3) कोई भी किसी भी जाति का व्यक्ति हो, उसे बिना किसी ऊँच-नीच और भेद-भाव के सभी के साथ बैठाकर प्रेम से भोजन कराया जाए।

(4) लंगर में राजा हो या रंग, सभी के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाए। पहले वह लंगर का प्रसाद छके, बाद में गुरु के दर्शनों को आए। गुरु अमरदास जी के ये चार नियम कड़ाई से पालन किए जाते थे।

8. साहित्य सृजन

गुरु अमरदास ने 870 शब्दों की रचना की थी। ये शब्द श्रीगुरुग्रंथ साहिब महला 3 के नाम से अंकित हैं।

9. अकबर से अनुरोध

एक बार दिल्ली का बादशाह अकबर लाहौर जा रहा था। उसने सुना कि व्यास नदी के किनारे गोयंदवाल नगर में सिक्खों का कोई हिन्दू गुरु रहता है। अकबर के मन में जिज्ञासा हुई। उसने अपनी सेना का पड़ाव व्यास नदी के किनारे डलवा दिया और भेष बदलकर अपने चन्द विशेष सिपहसालारों को लेकर गोयंदवाल में गुरु अमरदास जी के प्रवचन सुनने पहुँचा। वह चुपचाप अपने आदमियों के साथ एक ओर बैठ गया और गुरु के उपदेश सुनता रहा।

तभी कुछ लोगों ने अकबर को पहचान लिया तो उन्होंने गुरु जी के पास बादशाह अकबर के आने की बात पहुँचाई। इस पर गुरु जी ने अपने सेवादारों से कहा कि पहले बादशाह और उसके साथियों को लंगर में ले जाकर भोजन कराओ। बाद में मेरे पास आने को कहना।

सेवादारों ने गुरु का आदेश बादशाह अकबर को सुनाया तो बादशाह अकबर पहले तो झिझका, परन्तु फिर चुपचाप उठकर लंगर के वास्ते चल दिया। लंगर की व्यवस्था देखकर बादशाह अकबर बेहद खुश हुआ। उसने सभी के साथ बैठकर भोजन किया और वापस गुरु के पास आया। गुरु अमरदास ने बादशाह अकबर को आदर के साथ अपने पास बैठाया। अकबर ने गुरु अमरदास को प्रणाम किया और कहा—"मैंने आपके बारे में जैसा सुना था, वैसा ही आपको पाया। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो आज्ञा दें।"

गुरु अमरदास ने मुस्कराते अकबर से कहा—"बादशाह अकबर! मैं तुमसे इतना ही अनुरोध करूँगा कि सच्चा शहंशाह वह होता है, जो अपने कृत्यों से प्रजा के दिलों पर राज करता है। वह उन्हें बिना किसी जाति भेद और ऊँच-नीच के एक समान समझता है। तुम भी ऐसा ही करोगे और प्रजा की सेवा सच्चे मन और प्रेम से करोगे, ऐसा मेरा विश्वास है। मुझे आशा है कि तुम कभी अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करोगे और सभी के साथ न्याय करोगे। तुम्हारा निश्चित् रूप से कल्याण होगा।

गुरु अमरदास जी के शब्दों का अकबर पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने गुरु अमरदास जी को आश्वस्त किया कि वह उनकी आज्ञा मानकर ऐसा ही करेगा। अकबर ने गुरु लंगर के लिए अपनी ओर से काफी धन देने का प्रस्ताव किया। किन्तु गुरु जी ने साफ-साफ इन्कार कर दिया। गुरु अमरदास ने कहा कि इस प्रकार शाही धन से लंगर चलाने से सिक्ख संगत के सेवा-अधिकार को ठेस लगती है। तब अकबर ने एक भारी जागीर गुरु जी की बेटी बीबी भानी के नाम करते हुए कहा—

गुरु जी! भानी आपकी जैसी बेटी है वैसी ही मेरी है। यह जागीर मैं अपनी बेटी को दे रहा हूँ। इसे आप मना नहीं कर सकते।

इस पर गुरु जी कुछ नहीं बोले और मुस्कराकर रह गए। बादशाह अकबर खुश होकर वहाँ से चला गया।

अपने अन्त समय में, गुरु अमरदास जी ने गुरु गद्दी अपने शिष्य भाई रामदास को सौंप दी और 1.9.1574 ई० को इस नश्वर संसार से चलाना कर गोइंदवाल (अमृतसर) में ज्योतिजोत समा गए। उस समय उनकी आयु 95 वर्ष, 4 माह और 1 दिन थी।

गुरु अमरदास जी का जीवन बड़ा पारदर्शी था। वे छुआछूत के सख्त विरोधी थे। एक बार भाई दास नाम का एक ब्राह्मण उनके लंगर में आया। लेकिन वहाँ नीच जाति के लोगों को भोजन करते देखकर उसने भोजन करने से मना कर दिया। तब गुरु जी ने लंगर के सेवादारों से उसे कच्चा सामान दिलवा दिया। ब्राह्मण ने अपना भोजन पकाने के लिए जिस स्थान पर भी चूल्हा बनाने का प्रयत्न किया, उसी स्थान से हड्डियाँ निकलने लगीं। ब्राह्मण परेशान हो उठा। हारकर वह गुरु के चरणों में गिर पड़ा और उसने अपनी हार मान ली। तब उसने भी सभी के साथ बैठकर लंगर में भोजन किया।

गुरु जी ने उसे समझाया कि संसार में सभी प्राणी उस एक निरंकार परमात्मा के बनाए हुए हैं। उनमें किसी तरह का भेदभाव करना निरंकार के नियमों में व्यवधान डालना है। झूठे अहंकार से हम अपनी ही हानि करते हैं। गुरु अमरदास जी की कृपा से गोयंदवाल साहिब सिक्खों का एक बड़ा भारी केन्द्र बन गया था। अपने जीवनकाल में उन्होंने वहाँ (बावड़ी) नाम से एक बड़ा भारी तीर्थ स्थापित करने का प्रयत्न किया था। दूर-दूर से सिक्ख संगत वहाँ आकर जुड़ी थी। जिससे उनके रहने की व्यवस्था नहीं हो पा रही थी। तब गुरुजी ने अपने शिष्य सावनमल को कुछ सिक्खों का अगुआ बनाकर साकेत मण्डी भेजा, ताकि वहाँ के राजा से कुछ सहायता प्राप्त की जा सके। जाते समय गुरु जी ने एक रूमाल दिया और कहा कि जरूरत पर या किसी विपत्ति के समय यह तुम्हारी सहायता करेगा।

10. गुरु अमरदास जी की वाणी :

नउ दर ठाके धावतु रहाए।। दसवै निजघरि वासा पाए।।

ओथै अनहद सबद वजहि दिनु राती गुरमती सबदु सुणावणिआ।।6।।

बिनु सबदै अंतरि आनेरा।। न वसतु लहै न चुकै फैरा।।

सतिगुरु हथि कुंजी होरतु दरु खुलै नाही गुरु पूरै भागि मिलावणिआ।।7।।

—महला 3 पृ० 124

गुरु अमरदास जी मानव शरीर के रहस्य पर प्रकाश डालते हुए फ़रमाते हैं कि मानव शरीर के नौ दरवाजों—दो आँख, दो कान, दो नाक, दो गुप्तेन्द्रियां और मुख । यदि कोई साधक भटकते हुए मन को साधना द्वारा रोक कर रखे । इसके पश्चात् वह दशम द्वार पहुँच कर निवास करे तो उसे अनाहत शब्द की अद्‌भुत ध्वनि दिन रात बजती हुई सुनाई देने लगती है । गुरु की शिक्षा द्वारा ही वह इस शब्द का श्रवण करके अज्ञान का अंधेरा दूर करता है । इसके उपरांत उसे नाम रूपी वस्तु की प्राप्ति होती है और आवागमन का चक्र भी समाप्त हो जाता हैं परन्तु इसकी चाबी केवल गुरु के हाथ में ही है । किसी अन्य से यह द्वार नहीं खुलता है । परन्तु पूर्ण गुरु भाग्य से मिलाप कराता है ।

गुरु राम दास जी

24-9-1534 ई० - 1-9-1581 ई० (46 वर्ष 11 महीने 7 दिन)

4. गुरु रामदास

आज जिस सरोवर को हम अमृतसर के नाम से जानते हैं, पहले कभी उस सरोवर का नाम राम सरोवर था और उस सरोवर को बनाने वाले गुरु रामदास थे। गुरु रामदास बड़े ही मेहनती और कर्मठ इंसान थे।

1. जन्म और बाल्यकाल

बचपन में ही गुरु रामदास जी का नाम जेठा जी था। उनका जन्म लाहौर में, पिता हरिदास और माता दया कौर के घर 24.9.1534 ई० को लाहौर (पाकिस्तान) में हुआ था। जेठा के माता-पिता बहुत निर्धन थे। वे बड़ी मुश्किल से अपने पुत्र का पालन-पोषण करते थे। परन्तु जब विपत्ति आती है तो अकेले नहीं आती। वह सब तरह से आक्रमण करती है और जातक को तोड़कर रख देती है। यही बात जेठा के साथ भी हुई। जब जेठा सात वर्ष के थे, तभी उनके सिर से उनके माता-पिता का साया उठ गया था। उनका कोई सहारा न रहा था।

बासरके गाँव में जेठा की नानी रहती थी। लेकिन उसका भी रोजी-रोटी का कोई ठिकाना नहीं था। ननिहाल में कुछ दिन तो ऐसे ही बीते। लेकिन बाद में स्वयं जेठा को अपनी नानी का सहारा बनना पड़ा। नानी जेठा को बहुत प्यार करती थी। किन्तु उसका भरण-पोषण करने में वह असहाय थी। परन्तु इस छोटी सी आयु में भी जेठा ने हिम्मत नहीं हारी। वह घर पर ही नानी से थोड़े से चने उबलवा लेता और फिर घर-घर घूमकर उन्हें बेचा करता। इस प्रकार जेठा और उसकी नानी का बड़ी मुश्किल से गुजारा चल रहा था। धीरे-धीरे जेठा उबले हुए चने बेचने पास के गांवों में भी जाने लगा और इस प्रकार सुबह से शाम तक वह अपने धंधे में लगा रहता। इस धंधे के कारण से जेठा को पढ़ने-लिखने का अवसर नहीं मिल सका।

यह उन दिनों की बात है जब गुरु अमरदास जी बासरके में रहा करते थे। तब तक उन्हें गुरु गद्दी प्राप्त नहीं हुई थी। वे अपनी दुकान का काम ही देखा करते थे। एक बार वे अमरदास जी की दुकान के पास से छोले बेचते हुए निकले तो अमरदास की निगाह जेठा पर पड़ी। जेठा के भोले-भाले चेहरे को देखकर अमरदास को उस पर बड़ी दया आई। उन्होंने उससे कहा—

इधर-उधर भटकने से तो अच्छा है तू मेरी दुकान के पास बैठकर छोले बेचा कर।

जेठा को बात जंची। वह रोज वहाँ आकर बैठता और उबले हुए छोले बेचता। चने भी वह उनकी दुकान से ले जाने लगा। इस प्रकार बालक जेठा युवा हो गया और उसका सुन्दर रूप निखर आया। एक दिन भाई अमरदास की पत्नी ने अपने पति से अपनी बेटी भानी के लिए कोई योग्य वर ढूंढने के लिए कहा। भाई अमरदास ने अपनी पत्नी से कहा कि एक लड़का मेरी नजर में है। लेकिन उसकी आय कुछ खास नहीं है। वैसे भला और मेहनती लड़का है। समय आने पर मैं उससे बात करूँगा।

परन्तु तभी भाई अमरदास बासरके छोड़कर गुरु अंगद देव की शरण में खडूर चले गये। जेठा ने भी खडूर के गुरु अंगद देव के विषय में सुन रखा था। वह भी भाई अमरदास के साथ खडूर चला आया और गुरु संगत के बाहर बैठकर अपना पुराना धंधा उबले चने बेचता रहा। खाली समय में वह भाई अमरदास का हाथ लंगर में सेवा करते हुए बंटाया करता। एक सप्ताह में जो भी पैसा इकट्ठा करता, वह अपनी नानी को भेज देता। भाई अमरदास जेठा को बहुत पसन्द करने लगे।

1552 ई० में जब भाई अमरदास गुरु गद्दी पर विराजमान हुए तब गुरु गद्दी का वहन करते हुए उन्हें अपनी पुत्री बीबी भानी के विवाह की चिन्ता हुई। जेठा नित्य प्रति गुरु संगत के बाहर बैठकर अपना कारोबार उसी तरह से करता रहता था और गुरु अमरदास के सेवादारों के साथ मिलकर निर्धनों और दुःखियों की सेवा भी करता था। तब एक दिन गुरु अमरदास ने जेठा से बात की और अपनी बेटी भानी का विवाह फागुन मास की 22 तारीख को सन् 1555 ई० में कर दिया। विवाह के पश्चात् जेठा और भानी गुरु आश्रम में रहकर ही सेवादारों का कार्य करने लगे।

भाई जेठा गुरु अमरदास का दामाद बनकर भी निरभिमानी रहा। अहंकार को उसने अपने पास तक नहीं फटकने दिया। वह ग़रीब था और ग़रीबों के साथ ही अपना और उनका दुःख-दर्द बांटता रहता था। सेवा-भावना का विशाल भंडार उसके पास था। वह रोज गुरु जी की अमृत

वाणी सुनता, अपना पुराना उबले चने बेचने का धंधा करता और शेष समय में संगत की सेवा करता। विनम्रता, सेवा, परोपकार और गुरु की आज्ञा मानना उसका सहज धर्म था। अपने इन्हीं गुणों के कारण उसका व्यक्तित्व आकर्षक होता चला गया।

जब गुरु अमरदास गोयंदवाल जाने लगे तो उसे भी अपने साथ लेते गए। अपनी नानी को जेठा ने पहले ही अपने पास बुला लिया था। जेठा की भाँति उनकी पत्नी भानी भी सेवा और परोपकार में सबसे आगे रहती थी। दोनों मिलकर लंगर में जूठे बर्तन मांजते, झाड़ू लगाते, लंगर तैयार करने में सहायता करते और अपने गुरु के मैले कपड़ों को भी धो डालते। रोज रात को अपने गुरु के पैर दबाना वे कभी न भूलते। हालांकि गुरु अमरदास अपना दामाद होने के कारण भाई जेठा को ऐसा करने से रोकते, परन्तु जेठा उनकी एक न मानते। वे उनसे आर्द्र होकर कहते–

गुरु जी! मेरे इस अधिकार को आप न छीनें। मैं आपका बेटा हूँ, दामाद नहीं।

गुरु अमरदास भाई जेठा की बात सुनकर निरुत्तर हो जाते। उन्हें सेवा कर्म से दूर रखने का फिर कभी उन्होंने प्रयत्न नहीं किया। गोयंदवाल में व्यास नदी के कारण पीने के पानी की कोई कमी नहीं थी। फिर भी गुरु अमरदास ने एक बार वहाँ एक बावड़ी खुदवानी शुरू की। जिससे सूखे के समय खेतों को पानी मिल सके। उस बावड़ी की चौरासी सीढ़ियाँ बनवाई गई जो चौरासी लाख जन्मों का प्रतीक थीं। इस बावड़ी को खोदने में दूर-दूर से आए सिक्ख कारसेवा में लगे थे। भाई जेठा और उनकी पत्नी भी रोज खुदाई की मिट्टी के टोकरे अपने सिर पर रखकर बाहर लाते थे। एक बार जब सिर पर मिट्टी की टोकरी रखे जेठा जी मिट्टी फेंकने जा रहे थे, तभी लाहौर के यात्रियों के एक दल ने उन्हें देखा। उन यात्रियों ने जेठा से कहा–

सोढी कुल में जन्म लेकर तुम यह छोटा काम करते हो जेठा? तुम्हें शर्म नहीं आती?

उनकी बात सुनकर जेठा ने बड़ी नम्रता के साथ मुस्कराकर कहा–

गुरु कार्य में शर्म कैसी? फिर यह तो लोककल्याण का कार्य है। मेरे लिए ईश्वर और गुरु की आज्ञा में कोई अन्तर नहीं है। यह तो मेरा सेवा धर्म है। इस धर्म से बड़ा कोई धर्म इस संसार में नहीं है।

यात्रीगण शर्मिन्दा होकर चले गए। इस छोटी सी घटना ने गुरु अमरदास के हृदय में, जेठा भाई का स्थान सदैव के लिए सुरक्षित कर दिया। उन्हीं दिनों मुगल सम्राट् अकबर वहाँ आया था और गुरु अमरदास के लंगर में भोजन करने के बाद उसने लंगर के वास्ते एक बड़ी जागीर देनी चाही थी। किन्तु गुरु अमरदास ने विनम्रता के साथ उस जागीर को लेने से इन्कार कर दिया था। लेकिन अकबर ने दूसरा रास्ता अपना कर वह जागीर भानी को अपनी मुंह बोली बेटी बनाकर दे दी। गुरु इस बार इन्कार नहीं कर सके।

अब जागीर की देखभाल कौन करे? यह प्रश्न गुरु के सामने आया तो उन्होंने अपनी बेटी भानी और जेठा जी को बुलाया और उनसे उस जागीर के किसी गांव में जाकर रहने के लिए कहा। लेकिन जेठा गुरु अमरदास जी को छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहते थे। उन्होंने वहाँ से जाने से साफ़ इनकार कर दिया। अन्त में जागीर की देखभाल के लिए गुरु जी ने बाबा बुड्ढा को वहाँ भेज दिया। गुरु का आदेश पाकर बाबा बुड्ढा जागीर की देखभाल के लिए चले गए।

गुरु जी की दूसरी बेटी दानी का विवाह भाई रामे के साथ हुआ था। वे भी लंगर में मन लगाकर सेवा करते थे। लेकिन उन्हें गुरुदेव का दामाद होने का अभिमान था। एक बार गुरु जी ने अपने दोनों दामादों की परीक्षा लेने की कोशिश की। उन्होंने दोनों दामादों से अलग-अलग थड़ा (गद्दी) बनाने को कहा। दोनों ने ही बड़े मनोयोग से धड़े बनाए। लेकिन गुरु जी ने कहा, ये थड़े ठीक नहीं हैं। इन्हें गिरा दो।

दोनों ने मिट्टी से बनाए अपने-अपने थड़े गिरा दिए। गुरु जी ने उनसे दुबारा बनाने को कहा और दूसरी बार भी उन्हें ठीक न बताकर गिरवा दिए। इस प्रकार गुरु जी बार-बार उनसे थड़े बनवाते और कोई न कोई नुक्स निकालकर उन्हें गिरवा देते।

बार-बार थड़े बनवाने से भाई रामे झुंझलाकर वहाँ से चले गए और

कहते गए कि जो अच्छा थड़ा बनाए, उससे बनवा लो। गुरु अमरदास मुस्कराकर रह गए। उन्होंने जेठा भाई से पूछा–''तुम क्या कहते हो– जेठा?''

गुरु जी! हम तो सदा भूल करते हैं।'' जेठा ने नम्रता से हाथ जोड़कर कहा–''आप सदा हमारी भूल को माफ कर देते हैं। मैं फिर से थड़ा बना देता हूँ। आप मेरा मार्ग दर्शन करते जाएं।'' जेठा का उत्तर सुनकर गुरु अमरदास ने जेठा को गले से लगा लिया और सिक्ख संगत को सुनाते हुए कहा–

साधुओं! मेरे बाद मेरी गद्दी का हकदार भाई जेठा होंगे।

गुरु अमरदास ने अपना अन्त निकट देखकर समस्त सिक्ख संगत के सामने पांच पैसे, नारियल और तिलक देकर 13.8.1574 ई० को जेठा भाई को रामदास नाम देकर गुरु गद्दी सौंप दी।

इस गुरु गद्दी की प्राप्ति के पीछे एक घटना और भी मिलती है। एक बार गुरु अमरदास लकड़ी की चौकी पर बैठे स्नान कर रहे थे। उस चौकी का एक पाया टूटा हुआ था। चौकी का पाया गुरु जी के भार से टूटकर उन्हें चोट पहुँचा सकता था। इसलिये गुरु जी की बड़ी बेटी भानी ने अपना हाथ टूटे पाये के साथ लगा लिया। वहाँ एक कील निकली हुई थी। कील भानी के हाथ में चुभती रही और उससे खून बहने लगा। लेकिन जब तक गुरु जी स्नान नहीं कर चुके, भानी ने अपना हाथ नहीं हटाया।

नहाने के बाद गुरु जी की नजर भानी के हाथ पर पड़ी तो वे चिन्तित हो उठे। उन्होंने अपनी बेटी की गुरु भक्ति देखी तो द्रवित होकर उन्होंने अपनी बेटी से वरदान माँगने को कहा। बीबी भानी ने अपने पिता से कहा–

पिताजी मैं चाहती हूँ कि गुरु गद्दी घर में ही रहे।

बेटी की बात सुनकर गुरु अमरदास पहले तो हिचकिचाए, किन्तु फिर उन्होंने कहा ''ऐसा ही होगा। लेकिन यह गद्दी रक्त से प्राप्त है। इसलिए भविष्य में इस गद्दी के लिए बहुत रक्त बहाना पड़ेगा।''

बीबी भानी उनकी बात को उस समय नहीं समझ सकी। किन्तु इतिहास इस बात का गवाह है कि गुरु जी का यह वचन सत्य हुआ। गुरु अर्जन देव, गुरु तेग बहादुर व गुरु गोबिन्द सिंह और उनके चारों बेटों तथा लाखों सिक्खों ने इस गद्दी की रक्षा में, अपना रक्त बहाया। गुरु गद्दी सौंपकर गुरु अमरदास ने गुरु रामदास और अपनी बेटी भानी को उसकी जागीर में भेज दिया। उन्होंने कहा कि अब वहीं जाकर गुरु गद्दी की स्थापना करो और लोककल्याण के कार्य में अपना जीवन लगाओ।

2. साहित्य सृजन :

गुरु रामदास ने 638 शब्दों की रचना की जो गुरुग्रंथसाहिब के महला-4 के नाम से अंकित है।

3. अमृतसर की नींव :

उन दिनों कई वर्षों से बारिश नहीं हुई थी। लोग वर्षा न होने के कारण अत्यधिक दुःखी थे। गुरु रामदास ने सोचा कि एक नया नगर बसाया जाए और एक ऐसा सरोवर बनाया जाए, जिसमें सदैव जल भरा रहे। उन्होंने नक्शा बनवाया और उस नक्शे के अनुसार सड़कें, बाजार, घर, उद्यान, धर्मशालाएं और सरोवर बनवाना शुरू कर दिया गया। गुरु रामदास और बाबा बुड्ढा सारे दिन कार्य की देखभाल करते और मजदूरों की सुख-सुविधा का पूरा ख्याल रखते। इस नगर का पहला नाम 'गुरु का चक्क' पड़ा। यह नगर और सरोवर सात-आठ गांवों को मिलाकर बनाया गया था।

धीरे-धीरे नगर में रौनक बढ़ने लगी। लोग इसे गुरु रामदासपुरा के नाम से पुकारने लगे। गुरु रामदास ने यहीं पर अपना स्थायी निवास भी बना लिया। परन्तु वे पूरे 7 वर्ष भी इस गद्दी को सुशोभित नहीं कर पाए। वे केवल 47 वर्ष की आयु में दिन 1.9.1581 ई० को गोइंदवाल (अमृतसर) में ज्योतिजोत समा गये। अपने स्वर्गारोहण से कुछ दिन पहले ही अपने तीसरे पुत्र अर्जन देव को गुरु रामदास ने गुरु गद्दी सौंपी। इन्हीं गुरु अर्जन देव ने बाद में राम सरोवर के मध्य में हरिमन्दिर साहिब बनाया था और रामदासपुरा का नाम अमृतसर रखा था।

गुरु रामदास ने गुरु बनने पर सबसे पहला कार्य यह किया जो अब तक सिक्ख गुरुओं ने नहीं किया था। उन्होंने सिक्ख धर्म के प्रचार के लिए, नगर निर्माण तथा मंदिर के लिए धन एकत्र कराया। लंगर के लिए मुख्य मसंद नियुक्त किये। उनका काम अन्य सिक्खों से कारसेवा और धन एकत्र करना था। गुरु जी ने इनको हुक्मनामे देकर दूर-दूर तक भेजा था। ये मसंद जितनी भी भेंट लाते थे, उसे बाबा पृथ्वीचन्द के पास जमा कराते थे। पृथ्वीचन्द गुरु रामदास के बड़े पुत्र थे। खजाने की सारी देखभाल और लेन-देन वे ही करते थे।

गुरु रामदास ने अपने पूर्व गुरुओं की भाँति लंगर का बहुत अच्छा प्रबंध कराया। लंगर की सच्ची पवित्रता का वे सदैव ध्यान रखते थे। गुरु रामदास ने अपने इलाके में ढिंढोरा पिटवा दिया था कि कोई भी दुःखी पुरुष गुरु दरबार में किसी भी वक्त अपनी फरियाद कर सकता है। गुरु नानक देव की कृपा से उसका दुःख तत्काल दूर किया जाएगा। यदि रुपयों के कारण किसी का कारोबार बंद होने के कगार पर आ जाता तो गुरुकोष से उसकी सहायता की जाती। उसके कारोबार को फिर से चलवाया जाता। उसे साहस दिया जाता। वस्तुतः गुरु रामदास इस दुःखी संसार को तारने आए थे। उन्होंने हरिमन्दिर साहिब की नींव रखी थी, जिसे उनके पुत्र अर्जन देव ने पूरा किया था। वह हरिमन्दिर साहिब आज भी सिक्ख धर्म का महान् तीर्थ बना हुआ है। यहाँ पर लगभग 1,00,000 व्यक्ति प्रतिदिन लंगर छकते हैं। इतना बड़ा लंगर संसार में और कहीं भी नहीं चलता है।

4. गुरु रामदास की वाणी :

रामा रम रामो सुनि मनु भोजै।। हरि हरि नामु अंम्रितु रसु
मीठा गुरमति सहजे पीजे।।1।। रहाऊ।।
कासट महि जिउ है बैसंतरु मथि संजमि काढि कढीजै।। राम नामु है
जोति सबाई ततु गुरमति काढि लइजै।।1।।
नउ दरवाजे नवे दर फीके रसु अंम्रितु दसवे चुईजै।।
क्रिपा क्रिपा किरपा करि पिआरे गुर सबदी हरि रसु पीजै।।2।।

—महला 4 पृ० 1323

रामनाम की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए गुरु रामदास जी फरमाते हैं कि रामनाम सारे संसार में व्यापक है और रामनाम को सुनकर साधक का मन प्रेमजल से भीग जाता है। हरिनाम मीठा अमृतरस है। अतः गुरुजी की शिक्षा द्वारा स्वाभाविक ही उसे पान किया जाता है। लकड़ी में जैसे आग है परन्तु दिखाई नहीं देती है। परन्तु साधक उसे मंथन करके निकाल लेता है। इसी प्रकार हरिनाम है इसकी ज्योति सर्वत्र समाई हुई है। भक्त जन इस तत्त्व को गुरु की शिक्षा द्वारा निकाल कर प्राप्त कर लेते हैं। मानव शरीर के नौ दरवाजे हैं—दो आँखें, दो कान, दो नाक के छिद्र, मलद्वार और मूत्रद्वार। परन्तु मानव शरीर के ये नौ के नौ द्वार फीके हैं और उनमें गंदगी भरी है। परन्तु दसवें द्वार में नामरस का अमृत टपक रहा है। हे प्रभु! हम पर बारम्बार कृपा करो ताकि गुरु के उपदेश द्वारा हम हरिरस का पान कर सकें।

गुरु अर्जन देव जी

15-4-1563 ई० - 30-5-1606 ई० (43 वर्ष 1 महीना 15 दिन)

5. गुरु अर्जन देव

सिक्ख धर्म में शहीद होने वाले पहले गुरु अर्जन देव थे। मुगल बादशाह का सर्वप्रथम कोप गुरु अर्जन देव पर ही उतरा था। प्रायः देखने में आता है कि किसी आततायी का सामना अहिंसक रूप से वही व्यक्ति करता है, जिसके पास उसका सामना करने का बल नहीं होता। किन्तु यहाँ सिक्ख धर्म के एक ऐसे महान् सपूत का वर्णन किया जा रहा है, जिसके पास अकूत सम्पदा, शक्ति और जन विश्वास होते हुए भी उसने अहिंसक रूप से शान्त रहते हुए अत्याचारी मुगल बादशाह जहांगीर का सामना किया और अपनी आन के लिए हँसते-हँसते अपने प्राणों को बलिदान कर दिया।

1. जन्म और बाल्यकाल

गुरु अर्जन देव गुरु रामदास के तीसरे पुत्र थे। उनका जन्म 15.4.1563 ई० को गोइंदवाल (अमृतसर) में बीबी भानी के गर्भ से हुआ था। गुरु रामदास के पहले पुत्र का नाम पृथ्वीचन्द था जिसका जन्म 1557 ई० में हुआ था और उन्हीं के दूसरे पुत्र का नाम महादेव था जिसका जन्म 1560 ई० में हुआ था। गुरु अर्जन देव में आरम्भ से ही अपने नाना गुरु अमरदास और पिता रामदास के गुण कूट-कूट कर भरे थे। गुरु अर्जन देव का जन्म गोयंदवाल में तब हुआ था जब गुरु रामदास भाई जेठा के रूप में गुरु अमरदास की सेवा में थे। वे तब तक गुरु गद्दी पर नहीं बैठे थे।

अन्य बच्चों की भाँति गुरु अर्जन देव का लालन-पालन भी बड़े लाड़-प्यार से हुआ था। कहते हैं पूत के पांव पालने में ही प्रकट हो जाते हैं। गुरु अर्जन देव की इस महानता का परिचय उनके बचपन की घटनाओं से ही मिल जाता है। जिस समय अर्जन देव दो वर्ष के थे, तब एक बार वे गुरु अमरदास की उपस्थिति में गुरु गद्दी पर जा बैठे थे। बीबी भानी ने झटपट उन्हें गुरु गद्दी से नीचे उतारा और डांटने-फटकारने लगीं। बालक अर्जन जिद्द पकड़ गया—"माँ! यह गद्दी मेरी है। मैं इस पर बैठूँगा।"

"जरूर बैठना पुत्तर!" तभी वहाँ गुरु अमरदास आ गये। पास आकर उन्होंने बालक अर्जन देव को गोद में उठा लिया और बोले—

अभी तुम बहुत छोटे हो। जब बड़े हो जाओगे तो यह गुरु गद्दी तुम्हें ही संभालनी है।

गुरु अमरदास ने मुस्कराकर बालक को भानी की गोद में दे दिया और चले गए। आगे चलकर उनके नाना का यह वरदान सत्य सिद्ध हुआ। जबकि उसके दोनों बड़े भाई इस गुरु गद्दी को प्राप्त करने के लिए अपना दावा प्रस्तुत कर सकते थे। गुरु अर्जन देव अपने दोनों बड़े भाइयों से पढ़ने में तेज थे। युवा होने तक उन्होंने अनेक विद्याओं का नियमित अध्ययन कर लिया था। विवाह योग्य पर होने पर उसका विवाह मोड़ गाँव में भाई चन्द्र दास क्षत्रिय की पुत्री नेवा के साथ कर दिया। किन्तु कई वर्ष तक साथ रहने पर भी उन्हें सन्तान सुख प्राप्त नहीं हुआ। एक दिन बिना सन्तान के ही नेवा प्रभु को प्यारी हो गई। अर्जन देव को पत्नी की मृत्यु से बड़ा दुःख हुआ, लेकिन प्रभुइच्छा के आगे भला किसकी चलती है।

कुछ समय बाद अर्जन देव का दूसरा विवाह कालौर कस्बे के निकट भऊ गाँव के कृष्णचन्द्र की पुत्री गंगा के साथ कर दिया गया। इस भऊ गाँव में गुरु अर्जन देव का एक अंगोछा, एक चोला और एक पायजामा छूट गया था जो कि अब सिक्खों की धरोहर के रूप में यहाँ के गुरुद्वारे में रखा है। जो लोग यहाँ आते हैं उन्हें इन वस्त्रों के दर्शन कराए जाते हैं।

2. शरारत का जवाब

गुरु अर्जन देव युवाकाल से ही अत्यन्त प्रभावशाली और शक्तिशाली थे। उनकी शक्ति का प्रदर्शन उनकी ससुराल भऊ गाँव वालों ने विवाह के अवसर पर देखा था। गुरु अर्जन देव की बारात जब भऊ पहुँची तो भऊ गाँव के कुछ शरारती लोगों ने एक बबूल के पेड़ का ऊपरी भाग काट दिया। उसका ठूंठ ही थोड़ा सा ऊपर की ओर निकला रहने दिया। उस बबूल के पेड़ की जड़ बहुत नीचे तक गई हुई थी। आसानी से उसे उखाड़ा नहीं जा सकता था।

उन शरारती लोगों ने बारात को गाँव के बाहर ही रोक लिया और कहा कि हमारे गाँव का रिवाज है कि दूल्हा घोड़े पर सवार होकर नेजे से पहले इस ठूंठ को उखाड़कर ही आगे जा सकता है। दरअसल वे शरारती लोग दूल्हे का

मजाक उड़ाना चाहते थे। क्योंकि वे जानते थे कि दूल्हे राजा इसे उखाड़ तो सकेंगे नहीं। गुरु अर्जन देव उन शरारती लोगों की इच्छा तत्काल ताड़ गये। उन्होंने फौरन नेजा और घोड़ा मंगवाया। गांव वालों ने उन्हें एक निर्बल सा घोड़ा और मामूली सा नेजा लाकर दिया।

गुरु अर्जन देव घोड़े पर सवार हो गए और नेजा एक हाथ में पकड़ लिया तथा दूसरे हाथ से लगाम थाम ली। सारे बाराती दम साधे देखते रहे। क्योंकि उन्हें पता था कि गुरु रामदास के साहबजादे को न तो घुड़सवारी आती है और नेजा चलाना आता है। वे सोच रहे थे कि आज गाँव वालों के सामने उनकी बड़ी थू-थू होगी और वे सभी मजाक के पात्र बनेंगे। लोग कहेंगे कि कैसा कमजोर दूल्हा आया है।

अभी वे सोच ही रहे थे कि गुरु अर्जन देव ने घोड़े को तेजी से पीछे ले जाकर दौड़ाया और एक ही वार में बबूल की ठूंठ को नेजे से बाहर खींच लिया। लोग हैरानी से देखते रह गए। गुरु अर्जन देव घोड़ा मोड़कर पास आए और बबूल की ठूंठ को गाँव वालों के सामने डालते हुए बोले–''लो, मैंने इसे जड़ से उखाड़ दिया है।'' गाँव वाले और सारे बाराती गुरु अर्जन देव की शक्ति देखकर दंग रह गए। उसके बाद तो बारात और दूल्हे का जोरदार स्वागत गांव वालों ने किया और इस बात की चर्चा सारे गाँव में होने लगी। गुरु जी की होने वाली पत्नी का मस्तक गौरव से ऊँचा हो गया। वे धूमधाम से वधू को विदा कराके अपने घर लौट आए।

3. माया महा ठगनी

संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनका सिद्धान्त सदैव वैर का विरोध करना रहा है। शत्रुता और ईर्ष्या को वे माया का मूल मानते हैं। उनका कहना है कि वैर-विरोध की आग से सारा जगत जल रहा है। गुरुवाणी में एक स्थान पर लिखा है–

दावा अगन बहुत तृण जालै। कोई हरिया बूट रहियो री।।

वन की अग्नि में तिनका-तिनका जल गया है। हरा बूट (चना) तो कोई-कोई बचा है। अतः उस माया को, जिसके कारण वैर और ईर्ष्या की अग्नि प्रज्वलित होती है नष्ट करना ही उचित है।

कबीरदास जी का तो कहना है 'माया महाठगिनी' है। इसके नाक-कान काट लेने में ही भलाई है—

नाको काटी कानी काटी, काट कूट के डारी।

कहत कबीरा संतन की वैरन, तीन लोक की पियारी।।

इस माया के प्रभाव से कोई विरला ही बच पाता है। गुरु रामदास के सबसे बड़े सुपुत्र पृथ्वीचंद भी इस माया के फेर में ऐसे फंसे कि उन्हें ऊँच-नीच, अपने-पराए का कोई ख्याल ही नहीं रहा। गुरु के घर में आने वाली माया की देखभाल, रखरखाव का सारा काम पृथ्वीचन्द के ही हाथों में था। लाखों रुपयें के सोने-चांदी के बहुमूल्य जेवरात, रुपया-पैसा और हीरे-जवाहरात आदि जो बाहर की संगतें गुरुगद्दी पर लाकर चढ़ाती थीं, सबका हिसाब-किताब इन्हें ही रखना होता था। इतना सब होते हुए भी पृथ्वीचंद रात-दिन इसी चिन्ता में घुलते रहते थे कि गुरु रामदास का झुकाव उनकी ओर न होकर अर्जन देव की ओर अधिक था। वे स्वयं अपने आपको गुरु गद्दी का वास्तविक अधिकारी समझते थे। क्योंकि वे सबसे बड़े थे।

परन्तु अर्जन देव जैसे गुणों का उनमें सर्वथा अभाव था। गुरु रामदास अर्जन देव को ही सबसे अधिक प्यार करते थे और उन्हें ही अपने बाद गुरु गद्दी का अधिकारी मानते थे। गुरु रामदास वृद्ध हो चले थे। पृथ्वीचन्द को पता था कि वे किसी भी समय सिक्ख सम्प्रदाय के पांचवे गुरु का नाम घोषित कर सकते हैं। पृथ्वीचन्द कोई ऐसा मौका ढूंढ रहे थे कि किसी तरह से कुछ दिनों के लिये अर्जन देव यहाँ से बाहर चला जाए तो पीछे से वह गुरु गद्दी अपने नाम घोषित करा लें। इस प्रकार भीतर ही भीतर गहरी ईर्ष्या उन्हें खाए जा रही थी।

तभी उन्हें एक अवसर मिल गया। गुरु रामदास के बड़े भाई के बेटे भाई संहारी का लाहौर में विवाह तय हो गया था। विवाह के इस अवसर पर वे गुरु जी को लेने आए हुए थे। लेकिन गुरु रामदास के लिए संगतों का प्रेम छोड़ना कठिन था। पहले तो उन्होंने पृथ्वीचंद को जाने के लिए कहा। लेकिन

पृथ्वीचंद ने इन्कार करते हुए कह दिया कि लंगर के काम और संगतों के लेन-देन के कार्य में इतने उलझे हुए हैं कि उनका जाना तो हो नहीं सकेगा। यदि आपको भेजना ही है तो अर्जन देव को भेज दीजिए।

पृथ्वीचंद की बात सुनकर गुरु रामदास ने अपने सबसे योग्य पुत्र अर्जन देव को लाहौर भेज दिया और जाते-जाते उन्हें आदेश भी दिया कि जब तक वे उसे न बुलाएं, तब तक वे लाहौर से वापस न आएं। गुरु अर्जन देव अपने पिता के आज्ञाकारी पुत्र थे। उन्होंने पिता की आज्ञा सहर्ष स्वीकार कर ली और लाहौर ताया जी के बेटे की शादी में चले गए। उसके जाने पर पृथ्वीचंद बेहद खुश था। वह जानता था कि अब अर्जन देव जल्दी वहाँ से नहीं आएगा और पीछे से गुरु गद्दी उसे ही मिलेगी। लेकिन होता तो वही है जैसा ईश्वर को मंजूर होता है।

गुरु अर्जन देव भाई संहारी के विवाह पर लाहौर गए जरूर, किन्तु उनका मन गुरु दर्शन के लिए मचलता रहता था। लेकिन गुरु की आज्ञा का पालन करना भी आवश्यक था। संहारी के विवाह को तीन मास बीत गए, परन्तु गुरुदेव का बुलावा नहीं आया। उन्होंने तीन पत्र उन्हें लिखे पर एक का भी उत्तर नहीं आया। जैसे उन्होंने उसे भुला दिया हो। वे अत्यधिक बेचैन हो उठे। दरअसल वे जो भी पत्र भेजते थे उसे पृथ्वीचंद अपने पास रख लेते थे और अपने पिता गुरु रामदास को नहीं देते थे। इन्तजार करते-करते एक माह और बीत गया। अर्जन देव को ये चार माह चार युगों के समान प्रतीत हो रहे थे। तब अर्जन देव ने अपने गुरु जी को एक पत्र और लिखा।

उन्होंने लिखा कि उनका मन गुरु दर्शनों के लिए बहुत अधिक व्याकुल है। मन को किसी भी तरह से शान्ति नहीं मिल रही है। आप मुझे तुरन्त दर्शनों का अवसर दें। उधर गुरु रामदास जी समझ रहे थे कि अर्जन देव लाहौर में सिक्ख संगत के प्रचार में लगे हैं और अपने उपदेशों से उन्हें गुरुवाणी का रसास्वादन करा रहे हैं। वस्तुतः समय व्यतीत करने के लिए वे ऐसा भी कर रहे थे। ये ही खबरें गुरु रामदास जी के पास पहुँच रही थीं और वे अर्जन देव के कार्य में दखल नहीं देना चाहते थे।

किन्तु इस बार अर्जन देव ने जो पत्र भेजा वह अपने एक खास विश्वस्त सिक्ख के हाथों भेजा था और उसे निर्देश दिया था कि यह पत्र वह सीधे गुरु महाराज को ही दे। गुरु रामदास को पत्र मिला तो वे स्वयं भी बेचैन हो उठे। उन्होंने तत्काल संदेश भेजकर अर्जन देव को लाहौर से वापस बुलवा लिया।

इस बीच उन्हें वह यह भी पता चला कि अर्जन देव के पहले तीन पत्र पृथ्वीचंद ने छिपाकर अपने ही पास रख लिये थे। गुरु रामदास ने पृथ्वीचंद को ऐसा करने के लिए भला-बुरा कहा और उसे आगे से ऐसा न करने की चेतावनी भी दी। पृथ्वीचंद दिखावे के तौर पर तो बहुत ज्यादा शर्मसार हुआ उसने सफाई भी दी कि काम की अधिकता के कारण वह भूल गया था, परन्तु भीतर से वह अर्जन देव से और भी ज्यादा ईर्ष्या करने लगा था। अब पृथ्वीचंद को लगने लगा था कि गुरु गद्दी अर्जन देव को ही मिलेगी, तो उसने बात-बात पर अपने पिता से झगड़ा करना आरम्भ कर दिया। इस पर गुरु रामदास ने उसे समझाया–

बेटा! गुरु गद्दी योग्यता के आधार पर दी जाती है, न कि इस आधार पर कि तुम घर के बड़े पुत्र हो। तुम्हें अपना मन शांत रखना चाहिए और अपने छोटे भाई से वैरभाव नहीं रखना चाहिए। अर्जन देव ही गुरु गद्दी के सर्वथा योग्य हैं।

मैं ऐसा कदापि नहीं होने दूँगा।

पृथ्वीचंद चिल्लाने लगा–

मेरी योग्यता भी किसी से कम नहीं है। मैं ही इस गद्दी का वास्तविक उत्तराधिकारी हूँ।

गुरु रामदास ने उनकी एक न सुनी। वह चीखता-चिल्लाता रहता और गुरु रामदास के कार्यों में रोड़े डालता रहा। परन्तु गुरु रामदास ने जो निर्णय कर लिया था उन्होंने उसे पूरा किया। सारी संगतों के सम्मुख गुरु रामदास ने 1.9.1581 ई० को अर्जन देव को गद्दी सौंप दी और आप वहाँ से गोयंदवाल चले गये। जहाँ कुछ दिन पश्चात् ही उसका निधन हो गया।

गुरु रामदास का उचित अंतिम संस्कार सम्पन्न करके गुरु अर्जन देव अमृतसर लौट आए। गुरु अर्जन देव द्वारा गुरु गद्दी पाने वाले दिन चारों ओर से अतुल धन-सम्पदा भेंट स्वरूप आई थी। उसे देखकर पृथ्वीचंद का मन लालच से भर उठा था। उसने सारे कोष पर अपना अधिकार कर लिया और अपने व्यक्तियों को चारों ओर भेज कर अपने आप को ही सिक्खों का पांचवाँ गुरु घोषित करा दिया।

इधर गुरु अर्जन देव को पैसे की तंगी के कारण से लंगर को ठीक प्रकार से चलाने की समस्या होने लगी। किन्तु यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं चली। सिक्ख संगतों को धीरे-धीरे पता चल ही गया कि सिक्ख धर्म के पांचवें गुरु वास्तव में गुरु अर्जन देव हैं। लोगों की संगतें फिर से गुरु अर्जन देव के पास जुटने लगीं। पृथ्वीचंद की कुटिल चालों से सभी परिचित हो गये। पृथ्वीचंद ने जब अपनी चालें सफल होते नहीं देखीं तो उसने गुरु अर्जन देव को हानि पहुँचाने की योजना बनानी आरम्भ कर दी। ईर्ष्या और द्वेष की भावना में जलता हुआ पृथ्वीचंद मुगल सम्राट् जहांगीर के दरबार में दिल्ली पहुँच गया।

4. सिक्खों का महाकुंभ

इधर गुरु अर्जन देव ने सिक्खों को एक स्थान पर एकत्र करने के लिए एक योजना पर कार्य आरम्भ कर दिया। अमृतसर को सिक्खों का केन्द्रीय स्थान बनाने के लिए गुरु अर्जन देव ने राम सरोवर को पक्का करने और उसके चारों ओर परिक्रमा मार्ग और बुर्जियां आदि बनवाई। इसके बाद उन्होंने सरोवर के मध्य में, सच्च खण्ड और बैकुण्ठ के समान हरिमन्दिर स्थापित करने की कल्पना की। इसकी नींव रखने के लिए गुरु अर्जन देव ने लाहौर से दिनांक 3-1-1588 ई० को मियां मीर नामक मुसलमान फ़कीर को बुलवाया। क्योंकि गुरु अर्जन देव हिन्दू-मुसलमानों में कोई भेद-भाव नहीं करते थे और न ही किसी तरह की जात-पात को ही मानते थे। अतः उन्होंने ऐसा कर के धर्म निर्पेक्षता का परिचय दिया।

राम-सरोवर, जिसे अब अमृत सरोवर कहा जाता है, के मध्य में हरिमन्दिर की जिस दिन नींव रखी गई उस दिन अमृतसर में सिक्खों का महाकुम्भ एकत्र हुआ था। दूर-दूर से लोग इस महान् कार्य में अपना भाग देने

उपस्थित हुए थे । उस दिन अकाल पुरुष के सामने एक बड़ा भारी यज्ञ किया गया और अरदास की गई । बाद में उस महान् सांई मीर के हाथों मन्दिर की पहली ईंट रखवाई गई । लेकिन वहाँ उपस्थित कारीगर ने ईंट उठाकर सीधी रखते हुए कहा कि ईंट टेढ़ी रखी गई थी, इसलिए इसे सीधा कर दिया गया है । तभी गुरु अर्जन देव के मुंह से सहसा निकला–

यह ईंट अकाल पुरख के आगे अरदास करके भगवान् की आज्ञा से साईं मियां मीर के हाथों रखवाई गई थी । इस ईंट को उठाने से ईश्वर और उसके भक्त का अपमान हुआ है । इसलिए यह हरिमन्दिर साहिब एक बार अवश्य गिरेगा और इसका पुनः निर्माण होगा ।

गुरु जी का यह वाक्य सुनकर वहाँ उपस्थित सारी सिक्ख संगत कांप उठी । क्योंकि वे जानते थे कि गुरु का वचन झूठा नहीं हो सकता । सभी उस कारीगर को बुरा-भला कहने लगे । तब गुरु जी ने लोगों से कहा–

सन्तो ! इसमें इस बेचारे ग़रीब कारीगर का कोई दोष नहीं है । ईश्वर की ऐसी ही आज्ञा थी ।

तब सभी संगत के लोग कहने लगे–

महाराज ! हरिमन्दिर साहिब ठीक-ठाक बन जाए और सुरक्षित रहे, कोई ऐसा उपाय कीजिए ।

गुरु अर्जन देव ने आकाश की ओर देखते हुए कहा–

सन्तो ! जब यवनों के राज्य का अंत आने को होगा, तब वे इस मन्दिर को गिरा देंगे और अमृत सरोवर को मिट्टी व मलबे से भर देने का महापाप करेंगे । इसके बाद खासला पंथ में मैं फिर से जन्म लूंगा और उन यवनों के घरों से धन निकालकर इस हरिमन्दिर को फिर से बनवाऊँगा । इसे सोने के पतरे से मढ़ूंगा । तब ये स्वर्ण मन्दिर कहलाएगा और युगों-युगों तक सिक्खों का एकमात्र ऐसा धर्म स्थान बन जाएगा, जहाँ पहुँचकर बार-बार अरदास करने की लालसा प्रत्येक सिक्ख के हृदय में जीवन-ज्योति की भाँति जलती रहेगी ।

इसके बाद गुरु अर्जन देव ने हरिमन्दिर का निर्माण कराके इस नगर का नाम अमृतसर कर दिया अर्थात् वह स्थान जहाँ अमृत का सरोवर विद्यमान है ।

5. श्रीगुरुग्रंथ साहिब का अविर्भाव

गुरु अर्जन देव ने सबसे बड़ा काम यह किया कि उन्होंने गुरु नानक की वाणी, उनके विचार और अपने पूर्व सन्तों की वाणी का सार तत्त्व ग्रहण कराने का कार्य उस समय के विद्वानों से कराया और 'पोथी साहिब' नाम से एक धार्मिक ग्रंथ की रचना कराई। यह कार्य अत्यन्त कठिन था। किन्तु गुरु अर्जन देव ने पूर्व गुरुओं की वाणी को दूर-दूर से एकत्र कराया। गुरु नानक जहाँ-जहाँ गए, वहाँ-वहाँ उन्होंने विद्वानों को भेजा। इस ग्रंथ की रचना में भाई गुरदास का महान् योगदान है। आज के दिन यही पोथी 'श्रीगुरुग्रंथसाहिब' के नाम से सिक्ख धर्म में ईश्वर की भाँति पूजित होती है।

गुरु अर्जन देव दूरदर्शी थे। उन्होंने देखा था कि प्रत्येक धर्म की अपनी एक पुस्तक है। हिन्दुओं की 'रामायण' और 'गीता', मुसलमानों की 'क़ुरान', ईसाइयों की 'बाइबल' किन्तु सिक्ख धर्म की उस समय तक कोई धार्मिक पुस्तक नहीं थी। उन्होंने इसकी आवश्यकता अनुभव की और उन्हीं के महान् प्रयत्नों से 'श्रीगुरुग्रंथसाहिब' जैसा महान् धार्मिक ग्रंथ अस्तित्व में आया।

6. गुरुग्रंथसाहिब का सार

श्रीगुरुग्रंथसाहिब एक महान् धार्मिक ग्रंथ है। वस्तुतः श्री गुरुनानक देव ने 1539 ई० में श्री गुरु अंगद देव को वाणी की एक पोथी भेंट की थी। इसके उपरांत भी गुरु अंगद देव ने इस पोथी में कुछ और वाणी शामिल करके इस को गुरु अमरदास जी को सौंप दिया था। गुरु रामदास जी ने उक्त गुरुओं एवं भक्त कवियों की वाणी एकत्रित करके इस वाणी के दो भाग कर दिये थे जिसके पृष्ठ 1048 थे। इस प्रकार गुरु अर्जन देव इस अनमोल वाणी को लेकर अत्यंत प्रसन्न हुए।

इसके पश्चात् श्रीगुरु अर्जनदेव ने पूर्व गुरुओं और गत पांच शताब्दियों के दौरान रचित भक्तों की वाणी जो गुरमति सिद्धान्तों के साथ मिलती थी को एकत्रित करके 1603 ई० में अमृतसर के किनारे बैठकर भाई गुरदास जी से बीड़ लिखवानी आरंभ की थी। इस प्रकार 16-8-1604 ई० को दिन बृहस्पतिवार इसका सम्पादन पूरा हुआ था और उस समय इस ग्रंथ के 974 पृष्ठ थे। सबसे पहले इस ग्रंथ का नाम ''पोथीसाहिब'' रखा गया था।

इसके पश्चात् 1705 ई० में दमदमा साहिब में श्रीगुरुगोविन्द सिंह ने अपने पिता श्री गुरु तेग बहादुर की वाणी जिसमें 116 शब्द एवं श्लोक हैं इस ग्रंथ में जोड़कर इसको पूर्ण किया। यह पहला हुक्मनामा था। इस प्रकार बाबा बुड्ढा जितनी देर तक हुकमनामा पढ़ते रहे, श्रीगुरु अर्जन देव खड़े-खड़े चंवर झुलाते रहे। हुकमनामा के पाठ की पूर्णता के पश्चात् ''पोथीसाहिब'' से कथा की गई। श्रीगुरु अर्जनदेव जी ने संतों को आदेश दिया–

> आप इस ग्रंथ को गुरु का हृदय जानकर इसका सम्मान करना क्योंकि यह गुरु सार्वकालिक है, इसलिए इन पर विश्वास उत्तम है। मेरे शरीर से इन्हें बड़ा मान कर चलना। मैं स्वयं इनका आदर करता हूँ।

इसलिए उन्होंने भाई मनी सिंह को दोबारा यह सारा ग्रंथ जबानी लिखवा दिया था। गुरु गोबिन्दसिंह ने अपनी मृत्यु के केवल 4 दिन पूर्व 4-10-1708 ई० को सिख संगत को बुलाया और इस पवित्र ग्रंथ को लाने को कहा और आदेश दिया–

> संतो! मेरे बाद कोई जीवित व्यक्ति इस गुरुगद्दी पर विराजमान नहीं होगा। इस गुरुगद्दी पर श्रीगुरुग्रंथसाहिब विराजमान होंगे। अब आप लोग इन्हीं से अपना मार्गदर्शन कराना और इन्हीं से आदेश प्राप्त करना।

इस प्रकार 4-10-1708 को श्रीगुरु गोबिन्द सिंह ने श्रीगुरुग्रंथ साहिब को गुरुगद्दी बख्शी। उन्होंने श्रीगुरुग्रंथसाहिब के आगे पांच पैसे और एक नारियल रखकर सिर नवाया और सारे सिखों को आगाह किया कि आज के पश्चात् श्रीगुरुग्रंथसाहिब को ही अपना गुरु माने। इसके पश्चात् इसका नाम श्रीगुरुग्रंथसाहिब रखा गया। इस प्रकार संसार में यह सर्वप्रथम ग्रंथ है जिसको गुरु की पदवी प्राप्त हुई है। श्रीगुरुगोबिंद सिंह ने आदेश दिया–

आगिआ भई अकाल की तबै चलायो पंथ।
सब सिक्खन को हुकम है गुरु मानीओ ग्रंथ।
गुरु ग्रंथ को मानीओ प्रगट गुरां की देह।
जो प्रभु को मिलबो चहे खोज सबद मैं लैह।

--(पंथप्रकाश, ज्ञानी ज्ञान सिंह, पन्ना 353)

श्रीगुरुग्रंथसाहिब का श्रीगणेश ੧ओं (एक ओंकार) शब्द से होता है

जोकि सिक्ख धर्म का मूलमंत्र है और यह शब्द इस ग्रंथ में 33 बार अंकित है। इसका भाव है कि परमात्मा एक है। इसकी वाणी को 5 नामों से पुकारा जाता है– 1. गुरुवाणी, 2. धुर की वाणी, 3. खसम की वाणी, 4. महापुरख की वाणी, 5. सतिगुर की वाणी। इसमें 36 विभिन्न संत-महात्माओं की रचनाएं, 31 विभिन्न रागों में संकलित है। जैसे–गुरुनानक देव, गुरु अमरदास, गुरु अर्जन देव, गुरु तेग बहादुर, कबीर, सेख फरीद, नामदेव, रविदास, पापी आदि। प्रस्तुत ग्रंथ में सबसे अधिक वाणी (2305 शब्द) गुरुअर्जन देव की हैं और सब से कम एक-एक शब्द पीपा, रामानंद, सधना, सैण आदि संतों की हैं।

इस ग्रंथ के 1430 पृष्ठ हैं जिन्हें अंग के नाम से पुकारा जाता है और इसमें 5867 शब्द एवं श्लोक हैं। इसमें 8344 बार हरि, 2583 बार राम, 13 बार वाहिगुरु शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस की भाषा पंजाबी है और लिपि गुरुमुखी है। परन्तु इसमें संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, अरबी, फारसी विभिन्न प्रांतीय बोलियों आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार इसकी मिश्रित भाषा है।

प्रस्तुत ग्रंथ की मुख्य वाणियां ''जपुजीसाहिब'' (पृ० 1-8) एवं ''सुखमणी साहिब'' (पृ० 262-296) है। जपुजी साहिब गुरु नानक देव की वाणी है। इसमें श्रीगुरुग्रंथसाहिब का श्री गणेश होता है। इस वाणी में 38 पावडिया हैं। ''श्रीगुरुग्रंथसाहिब'' में गुरु अर्जन देव जी के 2305 शब्द हैं। ''सुखमनीसाहिब'' (पृ० 262-296 तक), 'बारहमाहा' आदि प्रसिद्ध वाणियाँ हैं। सुखमनीसाहिब में 24 अष्टपदीयां दिन रात 24 घंटों की गिनती के अनुसार हैं। प्रत्येक अष्टपदी में 1000 अक्षर हैं। इस प्रकार 24 अष्टपदियों का पाठ पुरुष के 2400 श्वांसों को सफल कर देता है।

गुरुबाणी का शुद्ध उच्चारण–

प्रत्येक बोली की पृथक्-पृथक् लिपि होती है जैसे पंजाबी की गुरुमुखी, हिन्दी की देवनागरी, अंग्रेज़ी, फ़ांसीसी, जर्मनी की रोमन और प्रत्येक लिपि के अक्षरों की संख्या विभिन्न होती है। जैसे पंजाबी की संख्या पहले 35 थी परन्तु बढ़कर 41 हो गई है क्योंकि इसमें अरबी व फारसी के शब्दों को व्यक्त

करने के लिए ख, ग, ज, फ, स, ल के नीचे बिन्दी लगाकर ख़, ग़, ज़, फ़, स़, ल़ नये वर्णों का निर्माण किया गया है ।

श्रीगुरुग्रंथसाहिब में लगभग 6 भाषाओं एवं 12 बोलियों के शब्द हैं । अतः जो व्यक्ति जितनी अधिक बोलियों को जानता होगा वह उतना ही गुरबाणी का शुद्ध उच्चारण कर सकेगा क्योंकि इसकी अपनी शैली की नियमावली है । जैसे गुरबाणी का पाठ करते समय यदि किसी शब्द के अंत में (ਿ) एवं (ੁ) की मात्रा लगी हो तो उसका उच्चारण नहीं होता जैसे नरकि का नरक और देहु का देह उच्चारण होगा । इसी प्रकार निवाज का निमाज, सैतान का शैतान, ग़रीब का गरीब, हजार का हज़ार, बखसीस का बखशीश शुद्ध उच्चारण होगा ।

गुरुबाणी की भाषा शैली --

भाषा की दृष्टि से ''श्रीगुरुग्रंथसाहिब'' एक अनुपम एवं अनूठा ग्रंथ है । क्योंकि प्रस्तुत ग्रंथ 12वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी (बाबा फरीद से गुरु तेगबहादुर तक) के अत्यंत महत्वपूर्ण चिन्तकों की वाणियों का संकलन है । यह पंजाबी भाषा एवं गुरुमुखी लिपि में लिखा हुआ है । परन्तु इसकी भाषा सधुक्कड़ी (खिचड़ी) है । इसमें विभिन्न राज्यों के गुरु, संत-महात्माओं एवं कवियों का काव्य लिया गया है । इस कारण अनकों भाषाएं- पंजाबी, हिन्दी, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज, अरबी, फारसी आदि का प्रयोग किया गया है ।

यदि छंद की दृष्टि से देखा जाए तो इस ग्रंथ का कोई सानी नहीं । बहुत से काव्य रूप जैसे--अष्टपदी, बारहमासा, आरती, घोड़ियां, अलाहुणीआं, पटी, बावन अखरी, सतवारा वार पउड़ी, रुती, थिती, सलोक, दोहे, चौपाई, सौरठा, सवईया आदि इस पावन ग्रंथ में मिलते हैं । इसलिए प्रिंसिपल सतबीर सिंह लिखते हैं–

> **ईसाई ख़ुदा की बोली लातीनी, मुसलमान अरबी और हिन्दू देववाणी संस्कृत को समझते हैं । गुरुग्रंथसाहिब ने समझाया कि अल्लाह, परमात्मा, वाहिगुरु की कोई खास बोली नहीं उसकी बोली सिर्फ प्यार है । इसलिये गुरुग्रंथसाहिब में हर प्रांत, हर देश, हर क्षेत्र और हर धर्म के शब्दों का प्रयोग किया गया है ।**
>
> श्रीगुरुग्रंथसाहिब का मुख्य संदेश है कि सारी मानवता को आपसी

भाईचारे, सद्भावना, सहानुभूति, प्रेम का वातावरण पैदा करके संतोष, सुख, शांति एवं आनंद उत्पन्न करना। वस्तुतः इस महान् ग्रंथ के सारे संत-महात्मा, महापुरुष थे और वे सारी मानवता का सुधार करना चाहते थे। अतः इस ग्रंथ की शिक्षाएं सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं। यह ग्रंथ उच्चतम ज्ञान एवं आध्यात्मिक अनुभव का विशाल भंडार है। अतः इसके विषय में महात्मा चैतन्यमुनि ने लिखा है–

गुरुग्रंथसाहिब मात्र शब्दों का नहीं बल्कि अनुभव का ग्रंथ है। विभिन्न संतों ने अनुभूति के स्तर पर जो कुछ आत्मसात् के स्तर पर जो कुछ आत्मसात् किया वही प्रस्तुत किया है। इन संतों ने भले ही विधिवत् आध्यात्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय न किया हो मगर इन्होंने साधना के उच्च शिखर में पहुँचकर जो कुछ अनुभव किया वहीं ग्रंथों का सार है। इसलिये ग्रंथसाहिब में वेदों, उपनिषदों, दर्शन ग्रंथों, ब्राह्मण ग्रंथों आदि के दार्शनिक तत्व स्वतः ही मिल जाते हैं।

इसी प्रकार मैकॉल्क ने अपनी पुस्तक "Sikh Religion" में लिखा है–

वाणी पढ़ते हुए ऐसा अनुभव होता है कि जैसे स्नान हो रहा हो, पाप झड़ते जा रहे हों एवं भ्रम दूर होते जा रहे हो।

ऑर्नलड टायनवी ने अपनी पुस्तक "Secret Religion of the Sikh" में लिखा है कि श्रीगुरुग्रंथसाहिब सारी मानवता का सांझा आध्यात्मिक भंडार है। सिखों के लिये श्रीगुरुग्रंथसाहिब जगतजोत है। यह एक प्रकार की सार्वलौकिक बीड़ है। तारण सिंह ने भी लिखा है--

सिख धर्म अपनी धर्म पुस्तक में बिल्कुल भारतीय है और राष्ट्रीय कोष को धारण करने वाला है। श्रीगुरुग्रंथसाहिब अपने आप में वेद है।

–भक्ति में शक्ति-पृष्ठ 19

इसी प्रकार बलबीर पुंज लिखते हैं :–

मानवता के लिए गुरु अर्जुन देव का सबसे बड़ा योगदान गुरुग्रंथ साहिब है, जिसमें सामाजिक सौहार्द की अद्भुत छाप है। गुरु ग्रंथ साहिब का संकलन अर्जुन देव (1581-1604 ई०) ने शुरू किया था और उसका समापन 10वें गुरु, गुरु गोविन्द सिंह जी ने किया। गुरुग्रंथ साहिब सम्पूर्ण मानवजाति के लिए एक अमूल्य आध्यात्मिक निधि है। इसमें केवल सिख गुरुओं की वाणी का ही संकलन नहीं है बल्कि इसमें भारत के विभिन्न भागों, भाषाओं और जातियों में जन्में संतों की वाणी भी संकलित है।

अतः रामायण, गीता, बाइबल, क़ुरान आदि धार्मिक ग्रंथों की भाँति इस महान् ग्रंथ का आविर्भाव अपने समय की एक ऐतिहासिक घटना है । इसका अनुवाद संसार की विभिन्न भाषाओं में हो चुका है और होना भी चाहिए ताकि इसका अधिक से अधिक प्रचार-प्रसार हो और संसार के व्यक्तियों का जीवन सुखमय, शांतिमय और आनंदमय हो । अतः इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि श्रीगुरुग्रंथसाहिब विभिन्न महापुरुषों की अद्‌भुत, अनुपम एवं अमर रचना है । इनकी रचना छंदोबद्ध है और यह काव्यवाणी के अलंकारों से ओतप्रोत है जोकि सारी मानवता के कल्याण के लिये लिखी गई है । अतः इसका स्वाध्याय करके प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को सुन्दर एवं सफल बना सकता है । वस्तुतः यह एक धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं महान् ग्रंथ है । इसकी सारी वाणी एक संदेश है—सरबत दा भला । अतः सरदार करनैल सिंह सरदार पंछी अपनी कविता ''श्रीगुरुग्रंथसाहिब'' जी में लिखते हैं :—

यह रूहानी तकदूस (पवित्रता) ''गुरुग्रंथसाहिब'' कहलाये है ।
सतिगुरु अरजन जी है इस ''ग्रंथ'' के तरतीबकार (संपादक) ।
जिसका होता है मुकद्दसतर (अत्यंत पवित्र) ग्रंथों में शुमार (गणना) ।
जिसमें शेख फरीद, भीखन शाह के सूफी विचार ।
बहुत ही अमूल्य है सरमाया-ए-वहदत-निगार ।

(पूंजी एवं एक ईश्वरवाद का पोषक)

भक्त त्रिलोचन, भक्त जयदेव का आला कलाम ।

(ऊँचे स्तर का काव्य)

सारी दुनियाँ में जिसे सिक्ख पढ़ते हैं हर सुबह-ओ-शाम ।

7. शरणागत की रक्षा

इधर गुरु अर्जन देव की ख्याति दूर-दूर तक फैल रही थी, तो उधर उनका बड़ा भाई पृथ्वीचंद ईर्ष्या के वशीभूत होकर बादशाह जहांगीर से उनकी चुगली कर रहा था । बादशाह जहांगीर उन दिनों दिल्ली से लाहौर जाते हुए कुछ समय के लिए बटाला में पड़ाव डाले पड़ा था । पृथ्वीचंद ने कुछ कट्टर काजी लोगों को साथ लेकर बादशाह के पास गुरु अर्जन देव की शिकायत की थी । बादशाह से कहा गया कि गुरु अर्जन देव ने एक ग्रंथ बनाया है, जिसमें पैग़म्बरों की शान के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा गया है । इस पर बादशाह ने गुरु अर्जन देव के पास कासिद भेजा और सही बात पता

लगाई। गुरु अर्जन देव ने भाई गुरदास को बादशाह के पास भेजा। भाई गुरदास ने बादशाह की शंका को बड़े ढंग से दूर कर दिया। किन्तु उसके मन में फिर भी शंका बनी रही। वह गुरु अर्जन देव के बढ़ते हुए प्रभाव से वैसे ही चिन्तित था। अब तो उसे गुरु के घर का भेदी मिल गया था। वह इसी मौके की तलाश में था।

दूसरी ओर जहांगीर बादशाह का एक भाई खुसरो अपने भाई से बग़ावत करके पंजाब में आ गया था। जहांगीर उसी का पीछा करते हुए आ रहा था। वह उसे काबुल पहुँचने से पहले ही पकड़कर मार डालना चाहता था। इत्तफ़ाक की बात है कि खुसरो गुरु अर्जन देव की ख्याति सुनकर, उनके दरबार में उपस्थित हो गया। गुरु अर्जन देव ने अपनी शरण में आए राजकुमार खुसरो की आर्थिक सहायता की और उसे छिपकार आगे बढ़ने का सुरक्षित मार्ग भी बताया। गुरु जी को यह भी पता था कि खुसरों को पकड़ने के लिए बादशाह जहांगीर एक बड़ी सेना लेकर उसके पीछे-पीछे आ रहा है। लेकिन गुरु जी ने अपने आदर्श के अनुसार शरणागत का स्वागत किया।

जहांगीर जब वहाँ पहुँचा तो खुसरो आगे निकल गया था। परन्तु जहांगीर के मुस्तैद सिपाहियों ने उसे झेलम नदी से आगे नहीं बढ़ने दिया और गिरफ्तार कर लिया। वह उसे लेकर लाहौर पहुँचा और क़त्ल करा दिया। इसी समय पृथ्वीचंद ने बादशाह जहांगीर को भड़काया कि गुरु अर्जन देव ने खुसरो को पनाह दी थी और 500 रुपया देकर उसकी सहायता भी की थी। यदि आप उसके पीछे-पीछे न आए होते तो वह सिक्खों के साथ मिलकर आपका मुकाबला करता।

जहांगीर तो पहले से ही गुरु अर्जन देव से खार खाए बैठा था। उसे मौका मिल गया। उसने तत्काल कासिद भेजकर गुरु अर्जन देव को लाहौर बुलवाया। गुरु अर्जन देव तत्काल समझ गए कि अब वे लाहौर से जिन्दा वापस नहीं लौट पाएंगे। गुरु अर्जन देव ने तत्काल बाबा बुड्ढा, भाई गुरदास और दूसरे महत्वपूर्ण सिक्खों की संगत बुलवाई। उनके आने पर उन्होंने अपनी गद्दी अपने पुत्र हरगोबिन्द को सौंप दी। उस समय उनकी आयु 11 वर्ष थी। गुरु अर्जन देव ने अपने पुत्र से कहा—

बेटा ! सिक्खों की नई चेतना देखकर बादशाह जहांगीर भयभीत हो गया है । अब मैं शायद लाहौर से जीवित वापस न लौट सकूं । मेरे पश्चात् तुम सिक्खों को संगठित करके उन्हें शक्तिशाली बनाने में अपनी पूरी शक्ति लगा देना । संगठित और शक्तिशाली समाज से टकराने का साहस, बड़ी से बड़ी शक्ति भी नहीं कर सकती ।

गुरु अर्जन देव की बात सुनकर सभी दुःखी हो उठे । किन्तु गुरु अर्जन देव ने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया और गद्दी की सारी देखभाल के लिए विशेष व्यक्ति नियुक्त कर दिए ।

8. शहादत का मंजर

वे अपने कुछ वफादार सेवादारों को साथ लेकर लाहौर चल दिए । शहंशाह जहांगीर के दरबार में जब उन पर बाग़ी खुसरों की सहायता करने का आरोप लगाया गया तो गुरु अर्जन देव ने कहा–

शहंशाह ! गुरु के दरबार में कोई भी आ सकता है । वहाँ कोई रोक-टोक नहीं है । कोई भेद-भाव नहीं है । शहजादा खुसरो मेरे दरबार में आम आदमी की तरह ही आए थे । उन्हें रोकना गुरु परम्परा का अपमान होता ।

जहांगीर को गुरु अर्जन देव की कोई भी दलील सन्तुष्ट नहीं कर सकी । वह तो अपनी राह के कांटे को उखाड़ कर फेंक देने के लिए कटिबद्ध था । जहांगीर ने गुरु अर्जन देव को 2,00,000 रुपये जुर्माना भरने का आदेश दिया । गुरु जी ने उत्तर दिया कि मेरे पास इतना धन नहीं है । जो भी है यह लंगर के लिये है । अतः मैं जुर्माना नहीं भर सकता हूँ । अतः जहांगीर ने गुरु अर्जन देव को प्राणदण्ड का हुक्म सुना दिया । दण्ड सुनाकर वह दिल्ली लौट गया । इधर गुरु अर्जन देव को पहले तो तरह-तरह की यातनाएं देकर इस्लाम धर्म अपनाने पर विवश किया गया । लेकिन गुरु अर्जन देव अपनी टेक से टस से मस नहीं हुए । जिस समय गुरु जी लाहौर जाने लगे थे, तब उन्होंने सिक्ख संगत को सम्बोधित करते हुए कहा था–

सन्तो ! आज के बाद तुम्हें दो नियम बदल देने हैं । पहली टोपी का त्याग कर पगड़ी बांधो और कमर में हर समय तलवार लटकाओ । गुरु गद्दी के स्थान पर अकाल तख्त की रचना करो । यदि अपने धर्म को बचाना चाहते हो तो तुम्हें जालिम शत्रु से युद्ध करने के लिए अपने आपको संगठित करके तैयार

रहना होगा। शान्ति और सब्र से कोई भी धर्म या कौम अब अपने आपको सुरक्षित नहीं रख सकती। उसके लिए शक्ति जरूरी है।

तब 30.5.1606 ई० को लाहौर (पाकिस्तान) में रावी नदी के किनारे, भट्ठी के ऊपर रखी तपती हुई लोहे की चादर पर बैठाकर उन पर गर्म रेत डाली गई और इस प्रकार उनकी हत्या कर दी गई। गुरु अर्जन देव उस गर्म लोहे की चादर पर बैठे-बैठे ही शहीद हो जाने वाले पहले सिक्ख गुरु थे। मरते समय गुरु अर्जन देव ने अपने शत्रुओं से कहा था–

तू मुझे कैसे मार सकता है? मैं तो अमर ज्योति हूँ। जो कभी नहीं मर सकती। इस नश्वर शरीर को तू भले ही मार डाल।

कहते हैं कि गुरु अर्जन देव ने ज्योति जोत समाने से पूर्व रावी नदी में स्नान करने की इच्छा प्रकट की थी उनके शिष्य उन्हें उठाकर रावी नदी पर स्नान करवाने के लिए ले गये। वहाँ जाकर उन्होंने 'जपुजी साहिब' का पाठ किया अंतिम शब्द बोले–

तेरा कीया मीठा लागै। हरि नामु पदार्थ नानक मागै।।

ये शब्द बोलकर गुरु जी ज्योतिजोत समा गये।

वस्तुतः श्री गुरु अर्जन देव श्री गुरुग्रंथसाहिब के रचयिता, श्री हरिमन्दिर के निर्माता और शहीदों के सरताज थे।

गुरु अर्जन देव की वाणी–

1. **करतूति पसू की मानस जाति।। लोक पचारा करै दिनु राति।।**
   बाहरि भेख अंतरि मलु माइआ।। छपसि नाहि कछु करै छपाइआ।।
   बाहरि गिआन धिआन इसनान।। अंतरि बिआपै लोभु सुआनु।।
   अंतरि अगनि बाहरि तनु सुआह।। गलि पाथर कैसे तरै अथाह।।
   जा कै अंतरि बसै प्रभु आपि।। नानक ते जन सहजि समाति।।

--महला-5 पृष्ठ 267

गुरु अर्जन देव लिखते हैं कि वैसे तो मानव है परन्तु उसके काम पशु के समान हैं। रात दिन लोक दिखावा करता रहता है। बाहर संत का वेश धारण किया है परन्तु हृदय में माया-मल है। माया को जितना व्यक्ति चाहे छुपा ले,

परन्तु वह छिपती नहीं है । बाहर से तो ज्ञानी, ध्यानी एवं स्नानी है । परन्तु मन में लोभ-श्वान लगा है । अंदर तृष्णाग्नि है और बाहर शरीर पर भस्म लगाई हुई है । इस प्रकार पाप रूपी पत्थर गले में बांधकर अथाह संसार-सागर से कैसे पार उतारा जा सकता है जिसके हृदय में प्रभु स्वयं निवास करता है वह स्वाभाविक ही समाधि में लीन हो जाता है । परमात्मा निराकार शक्ति है । अतः उसकी अनुभूति के लिये शुद्ध मन आवश्यक है । जैसे कबीर ने लिखा है–

कबीरा मनु निरमलु भइया जैसे गंगा नीर ।
पाछे लागो हरि फिरै कहत कबीर-कबीर ।

–श्रीगुरुग्रंथसाहिब पृ० 1367

2. **साध की महिमा बेद न जानहि । । जेता सुनहि तेता बखिआनहि । ।**
साध की उपमा तिहु गुण ते दूरि । । साध की उपमा रही भरपूरि । ।
साध की सोभा का नाही अंत । । साध की सोभा सदा बेअंत । ।
साध की सोभा ऊच ते ऊची । । साध की सोभा मूच ते मूची । ।
साध की सोभा साध बनि आई । । नानक साध प्रभ भेदु न भाई ।

--महला-5 पृष्ठ 272

श्री गुरु अर्जन देव जी लिखते हैं कि साधु की महिमा वेद भी नहीं जानते हैं क्योंकि उसकी महिमा अनन्त होती है । संत के विषय में हम जितना सुनते हैं उतना ही बखान करते हैं । परन्तु वह तो तीनों गुणों सत्व, रज एवं तम से ऊपर होता है । इसलिये ही उसे गुणातीत भी कहा जाता है । अतः उसकी महिमा सारे स्थानों पर भरपूर हो रही है । उसकी शोभा बेअंत होती है । उसकी शोभा ऊँची से ऊँची और बड़ी से बड़ी है । हे भाई ! साधु एवं भगवान् में कोई भी अंतर नहीं है । श्री गुरु अर्जन देव जी के कहने का भाव है कि सच्चा संत, त्यागी, तपस्वी, वीतरागी, निष्कामयोगी होता है । जैसे कबीर, सूर, तुलसी, नानक थे न कि लोभी और लालची जैसे आज के अधिकांश संत हैं । उसके हृदय में मानव-कल्याण की भावना कूट-कूट कर भरी होती है । जैसे तुलसी दास के शब्दों में–

तरुवर फले न आपको, नदी न पीवे नीर ।
परमारथ के कारने संतन धरा शरीर । ।

3. **कोई बोलै राम राम कोई खुदाइ । । कोई सेवै गुसईआ कोई अलाहि । । 1 । ।**
कारण करण करीम । । किरपा धारि रहीम । । 1 । । रहाउ । ।
कोई नावै तीरथि कोई हज जाइ । । कोई करै पूजा कोई सिरु निवाइ । । 2 । ।
कोई पड़ै बेद कोई कतेब । । कोई ओढ़ै नील कोई सुपेद । । 3 । ।
कोई कहै तुरकु कोई कहै हिंदू । । कोई बाछै भिसतु कोई सुरगिंदू । ।4 । ।
कहु नानक जिनि हुकमु पछाता । । प्रभ साहिब का तिनि भेदु जाता । ।5 । ।

--रामकली महला 5 पृ० 885

गुरु अर्जन देव जी संसार के लोगों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि संसार में विभिन्न प्रकार के व्यक्ति हैं । इसलिये परमेश्वर को याद करने के सब के अलग-अलग ढंग हैं । अतः कोई परमात्मा को राम, कोई ख़ुदा, कोई गोस्वामी, कोई अल्लाह के नाम से पुकारता है । वह दयालु परमात्मा सभी कारणों का कारण है । कृपालु और मेहरबान है । कोई तीर्थों पर जाकर स्नान करता है और कोई हज के लिये मक्के जाता है । कहने का भाव यह है कि हिन्दू विभिन्न तीर्थों पर जाकर स्नान करते हैं और मुसलमान मक्के जाकर हज करते हैं । यही उन्हीं के लिये तीर्थ है । कोई परमात्मा की पूजा करता है और कोई उसके आगे सिर झुकाता है । कोई वेदों को पढ़ता है और कोई सभी धर्मग्रंथ पढ़ता है । कोई नील वस्त्र धारण करता है और कोई सफेद वस्त्र धारण करता है । कोई अपने को हिन्दू कहता है और कोई मुसलमान कहता है । कोई बहिश्त मांगता है कोई स्वर्ग मांगता है । परन्तु गुरु अर्जन देव कहते हैं कि जिन्होंने प्रभु की आज्ञा को पहचाना । उन्हींने ही प्रभु का भेद पाया है । गुरुजी के कहने का भाव यह है कि सब व्यक्तियों का एक ही परमात्मा है और उसी की हमें स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए जैसे गुरु नानक देव लिखते हैं–

एको सिमरो नानका, जो जल थल रहा समाइ ।
दूजो काहो सिमरिये, जो जन्मे ते मर जाइ ।

4. **हउमै रोगु मानुख, कउ दीना । काम रोगि मैगलु बसि लीना । ।**
द्रिसटि रोगि पचि मुए पतंगा । नाद रोगि खपि गए कुरंगा । । 1 । ।
जो जो दीसै सो सो रोगी । रोग रहित मेरा सतिगुरु जोगी । । 1 । । रहाउ । ।

जिहवा रोगि मीनु ग्रसिआनो । बासन रोगि भवरु बिनसानो । ।
हेत रोग का सगल संसारा । त्रिबिधि रोग महि बधे बिकारा । । 2 । ।
रोगे मरता रोगे जनमै । । रोगे फिरि फिरि जोनी भरमै । ।
रोग बंध रहनु रती न पावै । । बिनु सतिगुर रोगु कतहि न जावै । । 3 । ।
पारब्रहमि जिसु कीनी दुइआ । बाह पकड़ि रोगहु कढि लइआ । ।
तूटे बंधन साध संगु पाइया । । कहु नानक गुरि रोगु मिटाइआ । । 4 । ।

--भैरउ महला-5 पृष्ठ 1140-41

श्री गुरु अर्जन देव जी लिखते हैं कि परमात्मा ने व्यक्ति को अभिमान के रोग से ग्रस्त कर रखा है । इसी प्रकार हाथी को काम का रोग है और इसी कामुकता के कारण वह काल का ग्रास हो जाता है । दृष्टि रोग के कारण पतंगा अग्नि में जलकर अपने प्राण गंवा बैठता है । श्रवण रोग से हिरण काल का ग्रास हो जाता है । इस प्रकार संसार का प्रत्येक प्राणी रोगी है और रोगरहित केवल सत्यस्वरूप परमात्मा है या योगी है । जीभ के रोग (स्वाद) के कारण मछली पकड़ी जाती है । सुगंध के रोग के कारण भ्रमर कमल में ही नष्ट हो जाता है । सारी सृष्टि तीन प्रकार के गुणों–सत्व, रज, तम वृत्तियों से उत्पन्न रोग से ग्रस्त है । वस्तुतः प्राणी रोग में ही मरता है एवं रोग में ही जन्मता है । बारम्बार 84 लाख योनियों मे भटकता है । इस प्रकार रोगग्रस्त प्राणी रत्ती भर भी टिकाव नहीं पाता । परमात्मा या सतगुरु की शरण ग्रहण किये बिना रोग किसी प्रकार भी दूर नहीं होता । परन्तु परमात्मा जिस पर कृपा करते हैं उसे बांह पकड़कर रोगों से दूर कर देते हैं । इसके बाद व्यक्ति को सच्चे आनंद की अनुभूति होती है क्योंकि आनन्द ही परमात्मा है । जैसे तुलसी दास जी ''रामचरितमानस'' में लिखते हैं–

क्रोध, मनोज, लोभ, मद माया । छुटहिं सकल राम की दाया । ।
सो नर इंद्र जाल नहिं भूला । जापर होई सो नट अनुकूला । ।
उमा कहँउ में अनुभव अपना । सतहरि भजनु जगत सब सपना । ।

--(अरण्यकाण्ड) 38 (ख) 2.3